ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

# अथ जन्म पत्रिका

अस्याधिकारी :– श्रीमोहनलाल S/o श्री[illegible]

मिलने का पता – विजयेश्वर ज्योतिष कार्यालय
बिज बिहारा, काश्मीर



* श्रीहरिः शरणम् *

# अमरकथा

(कश्मीरप्रदेशस्थ अमरनाथयात्रा का माहात्म्य)

श्रीभृङ्गीशविरचित

जिसे

पं० रामप्रपन्नशास्त्री काव्यतीर्थ जी

तथा पं० लब्धरामशास्त्री जी की सहायता से

परमविरक्त मुमुक्षुमुख्य महान्त

श्रीसरस्वतीगिरि जी

ने लोकोपकारार्थ अमरचन्द्रिका भाषाटीका से भूषित किया।

# AMAR KATHA

by

BHRINGISH PRAMATHA.

With new Commentary

AMAR CHANDRIKA

by

Mahant Shri Saraswasti Giri,

assisted by

Pt. Ramprapanna Shastri Kavya Tirth,

and

Pt LaBdha Ram Shastri.

पं रामप्रपन्नशास्त्री जी ने अपने व्यय से

पं० महावीर प्रसाद के अधिकार से

विद्याप्रकाश मैशीन प्रेस' चंगड़ मुहल्ला, लाहौर में छपवाया।



( सं० १९८३ वै० प्र० ३० )

१३ पृ० १३ पं० के अन्त की यह त्रुटि है । "हे महादेव हे शिव हे शङ्कर हे शंभो कृपा करो २ । यह श्लोक छि आगे के पांचों आगे २ श्लोकों के पूर्व पढ़ना चाहिये ।

20 The adina nath mayer mattan arin amar, katha, neno 2 n ray sohll

# प्रस्तावना

सर्व महात्मा और भक्त पुरुष तथा भारतदेवीजनों को विदित हा कि कश्मीर राज्य के बीच हिमालय पर्वत में एक अमरनाथ जी का स्थान है। जहां श्रावण मास की रक्षापुण्या में वर्ष भर में १ दिन ही शिव लिङ्ग का दर्शन होना है। सहस्रों साधु महात्मा नर नारियें बड़े २ क्लेश पाकर उस पहा.ड में दर्शनार्थ जाते हैं जहां सदैव बर्फ पड़ी रहती है। नीचे छोटी २ नदियें ऊपर बर्फ के पुल पड़े रहते हैं जिन पर घोड़ों समेत लोक पार हो जाते हैं। यहां ही महादेव जी ने निर्जन वन करके पार्वती देवी को अमर कथा सुनाई है। जो १ तोते के बच्चे ने सुन कर शुकदेव स्वरूप को पाया था। यहां अद्भुत स्वरूप बर्फ के शिवलिङ्ग के दर्शन होते हैं। जो चन्द्रकलाओं की तरह कृष्णपक्ष में घटते और शुक्ल पक्ष में वढ़ते २ पूर्णिमा को पूरे हो जाते हैं। यह उसी स्थान का माहात्म्य आप के हाथ में है। इसे एक दम आरम्भ से अन्त तक देख जाइये आप को सब की सब विधि और तत्त्व मालूम हो जायगा। इस विषय में विशेष बात कहने की आवश्यकता नहीं यह पुस्तक हमने बड़े परिश्रम से मटन (मार्तण्ड क्षेत्र) के पण्डों से ली है (जहां मल-मास में श्राद्ध कराने का बड़ा फल लिखा है। जो कश्मीर श्री नगर से अमर-यात्रा के तीसरे पडाव में है) फिर यह पुस्तक पं० रामप्रपन्न शास्त्री काव्य तीर्थ जी को देदी उन्हों ने ४।५ पुस्तक और संपादन करके इस को संशोधन किया तथा संस्कार परिष्कार कर के ठीक बना दी।

फिर पं० लब्धराम शास्त्री हिन्दी मुख्याध्यापक श्रीरणवीर हाई,स्कूल तथा उक्त पं० रामप्रपन्नशास्त्री जी की सहायता से इस की भाषा टीका बना दी। पं० रामप्रपन्न जी ने अपने ही उद्योग और द्रव्यव्यय से छपा भी दी। जो सब सज्जनों के हितार्थ प्रस्तुत है।

इस के छपाने के समय बहुत काम रहे बुद्धि भी अस्तव्यस्त थी अतः संशोधनकार्य परहस्तगत करना पड़ा। जिस से बहुत अशुद्धियें रह गई और टीका भी कहीं २ ठीक नहीं बन सकी जैसी इच्छा थी। तथापि हमें पूर्ण विश्वास है कि सत्पुरुष क्षमा करके संशोधन कर लेंगे और श्रोताओं को रोचक और सरल कर के समझा देंगे।

इस के संपादन में जिन २ सज्जनों ने पुस्तकें देने की कृपा की है उन को सादर पं० रामप्रपन्न शास्त्री जी धन्यवाद देते हैं ।

१. पुस्तक मटन के हमारे पंण्डों से मिली जो प्रायः शुद्ध और अति-विस्तृत थी इस में कई एक प्रसंग ऐसे थे जिन मे मूल कुछ न मिल सका इस लिए उन्हें छोड़ देना पड़ा ।

२यं पुस्तक पं० भक्तराम ज्योतिषी जी से मिला जो बड़ा शुद्ध था क्यों कि यह एक कश्मीर के प्रसिद्ध लेखक महामहोपाध्याय पं० मुकुन्दराम जी का लिखा हुवा था । इस का ही पाठ प्रायः उक्त पण्डित जी ने आश्रयण किया है ।

३य पुस्तक पं० श्रीचन्द्र जी तर्कतीर्थ वायस प्रिन्सपल श्रीरघुनाथ पाठशाला जम्बू से लब्ध हुआ जो भङ्गीशसंहिता में था प्रायः अशुद्ध था ।

# इति शिवम्

नि० स्वामी सरस्वतीगिरि ( विरक्त ) सर्वजनहितैषी

भूतपूर्व अमरनाथ तथा श्रीरणवीरेश्वरादि महान्त, कोठी राणी तालाब जम्बू ( कश्मीर )

# सूचीपत्र ।

श्रीगणेशाय नमः ।

# अथ श्री अमरकथाप्रारम्भः ।

श्रीहरिः शरणम्

---

एकाकारो निराकारो विकारै रहितो हितः ॥
मनोऽमान्यो वचोऽवाच्यो श्रीयतेंऽहोहरिर्हरः ॥१॥
कदाचित्कोपि योगीशो नानादेशेषु वै भ्रमन् ॥
महादेवस्य भक्तानां मुख्यः शास्त्रविशारदः ॥२॥
चातुर्मास्यस्थितिं काक्षन् आजगाम शिवालयम् ॥
मठं सन्यासिनां तत्र मठेशं प्रोक्तवांस्तदा ॥३॥
स्थित्यर्थन्तेन चापीदं स्वीकृतं श्रद्धया वचः ॥
बहुकालं दिवा पूजासमाध्यादिक्रियोत्तरम् ॥४॥
रात्रौ मठेशं स प्राह कथा धर्म्या अनेकशः ॥
मठेशेनैकदा पृष्टः सर्वलोकहिताय वै ॥५॥

एकरस, निराकार, विकाररहित, हितकारी, मन से मनन करने के अयोग्य और वाणी से अकथनीय पापों के हरने हार श्रीमहादेवजी का आश्रय लेता हूं । १ किसी समय में कोई योगीश्वर जो महादेव के भक्तों में शिरोमणी भक्त थे और शास्त्र में चतुर थे अनेक देशों में भ्रमण करते हुए किसी शिवालय में प्राप्त हुए ॥ जो संन्यसियों का मठ था उस शिवालय में वह महात्मा चुमासा व्यतीत करने की इच्छा से मठ स्वामी को

निवास के लिये श्रद्धा पूर्वक कहने लगे ॥ २—३ ॥ मठस्वामी जी ने भी श्रद्धा से उस के बचन को श्रवण कर निवास के लिये स्वीकार कर ( मान ) लिया ॥ वह योगीश्वर भी बहुत काल तक दिन में पूजा समाधि आदि क्रिया कर्म करता रहता था, इसी नित्यकर्म के अनन्तर कभी मठ-स्वामी की प्रार्थना से उस महात्मा ने उस स्थानधारी को रात्रि के समय अनेक प्रकार की धर्मसम्बन्धि कथा सुनाई जो कथा लोगों के हित करने वाली थीं ॥ ४—५ ॥

## मठेश उवाच

नानादेशेषु तीर्थेषु चाश्रमेषु वनेषु च ॥
भ्रमन्नश्रान्तचित्तो वै निगमागमतत्परः ॥६॥
उपसन्नः समित्पाणिर्जिज्ञासुरहमेकधीः ॥
भवन्तं तातपृच्छामि भवाब्धेस्तारिणीकथाम्॥७॥

( मठस्वामी बोले )

हे महाराज मैं चित्त में श्रम नहीं मानता हुवा यानी बड़े उत्साह से अनेक प्रकार के तीर्थ, देश, आश्रम, और वनों में फिर आया हूं। मैं शास्त्र और वेद के विचार में तत्पर हूं तथापि एकाग्रचित्त होकर हाथ में समिधाएं ले यानी गौरव से आप से संसार सागर से पार उतारने हारी कथा सुनना चाहता हूं ॥ ६—७ ॥

## (योगीश्वर उवाच)

महात्मन् धर्मकर्मज्ञ ! लोकानुग्रहकारकम् ॥
साधु साधु त्वया पृष्टं कथयिष्ये शुभां कथाम्॥८॥
रम्याममरनाथस्य लोकद्वयसुखावहाम् ॥
एकदाहं सतीतीर्थं गतवान् तीर्थदर्शकः ॥९॥

( योगीश्वर जी बोले )

धर्म–कर्म के जानने वाले हे महात्मन् ! आपने लोगों के हित के लिये बहुत उत्तर प्रश्न किया है, मैं आप को दोनों लोकों में हित करने हारी श्री अमरनाथजी की संसार तारणी अमर कथा सुनाता हूं, एक समय मैं तीर्थ यात्रा के निमित्त से सती तीर्थ पर जा प्राप्त हुआ ॥ ८—९ ॥

तत्रकोऽस्ति महादेवःसुधालिङ्गो मठेश्वर !॥
यद्दर्शनेन पापानिं नश्यन्ति प्राणिना प्रिय ! ॥१०॥

हे प्यारे महन्तजी वहां पर मैंने हिम ( बर्फ ) से बनी हुई महादेवजी की मूर्ति देखी कि जिस के दर्शन से प्राणिमात्र के पाप दूरहो जाते हैं ॥१०

तत्रामरकथां श्रुत्वा तदुक्तविधिनाऽऽचरन् ॥
ज्ञानाग्निदग्धकर्मौघो मोक्षं प्राप्नोति मानवः ॥११॥

वहां पर अर्थात् सतीतीर्थ में अमरकथा को श्रवण कर तदनुसार आचरण करता हुआ पुरुष ज्ञानरूपी अग्नि से सब कामों के दग्ध होन पर मोक्ष को प्राप्त हो जाते है ॥ ११ ॥

## मठेश उवाच

अहो परमधर्मज्ञ ! मादृशऽज्ञाननाशक ! ॥
महाप्राज्ञ दयाम्भोधे ! साधूक्तं मे हितं वचः ॥१२॥

( मठेश्वर जी बोले )

हे परम उत्तम धर्म के जानने हारे दया के समुद्र तथा बड़ी बुद्धिवाले और मेरे जैसे पुरुषों के अज्ञान रूप अन्धकार को दूर करने हारे ! आप ने मेरे हित के लिये उत्तम वचन कहे हैं ॥ १२ ॥

परं मे ब्रूहि भो विद्वन् ! कुत्र स्थानं तदस्ति वै ॥
कथं यात्रा प्रकर्तव्या केन मार्गेण वा कदा ॥१३॥

हे पण्डितशिरोमणि ! वह तीर्थ किस स्थान पर है और किस मार्ग से किस प्रकार वहां यात्रा करनी चाहिये आप मेरे प्रति यह कथन करें ॥ १३ ॥

किं फलं किं विधानञ्च रसलिङ्गस्य दर्शने ॥
तत्सर्वं विस्तरेणैव कथयस्व ममानघ ॥१४॥

हे निष्पाप ! रसलिङ्ग के दर्शन की क्या विधि है, और देखने वाले को क्या फल प्राप्त होता है यह सम्पूर्ण आप मेरे प्रति कथन करें ॥ १४ ॥

(योगीश्वर उवाच)

आसीत् सतीसरो नूनं हिमपर्वतमध्यगम् ॥
तत्र नागाधिवासश्च नागराजेन रक्षितः ॥१५॥

( योगीश बोले )

हे महात्मन् हिमालय पर्वत के मध्य में सती सरोवर नाम करके एक तीर्थ है वहां नागों की बस्ती है जिस की रक्षा नागों का राजा करता है ॥१५॥

मुनीश्वरः कदाप्यत्र कश्यपोप्यायपयौ भ्रमन् ॥
तदाज्ञया च योगीश ! मानवानां स्थितिंतदा ॥१६॥
कृतवान् नागराजो वै बहुदुःखेन चानघ ॥
अथैवं बहुवर्षेषु गच्छत्सु च कृपानिधे ! ॥१७॥
निजकर्मप्रभावेण नानाक्लेशयुतान्नरान् ॥
दृष्ट्वा दयार्द्रहृदयो भृङ्गीशो बहुदुःखितः ॥१८॥

परिभ्रमन् समायातो लोकानुग्रहकाङ्क्षया ॥
साधून्महात्मनो बुद्धान् जिज्ञासून्धर्मसङ्गतान् १९॥
एकत्रीकृत्य प्रोवाच बहून्धर्मान्कृपावशः ॥
अन्ते तु रसलिंगस्य माहात्म्यं प्रोक्तवान्मुदा २०॥

हे योगीराज किसी समय मुनियों में श्रेष्ठ कश्यप मुनिजी वहां भ्रमण करते हुए आप्राप्त हुए। उनकी आज्ञा से नागराज ने बहुत दुःखसे उस स्थान पर मनुष्यों का निवास स्वीकार किया। इस प्रकार बहुत काल व्यतीत होने पर हे कृपा के समुद्र निष्पाप महात्मन अपने कर्मों के प्रभाव से अनेक प्रकार के कर्मों से दुःखी हुए मनुष्यों को देख कर अपने आप में दुःख को अनुभव करते हुए दयायुक्त भृङ्गीश ऋषि भी लोगों पर दयादृष्टि करने के कारण घूमते घामते वहां पर आ प्राप्त हुए वह भृङ्गीशजी बुद्धिमान् जिज्ञासु (धर्म की गति जानने की इच्छा वाले) साधु महात्माओं को एकत्रित कर कृपापूर्वक उनको बहुत प्रकारों से धर्म सम्बन्धि कथा कह सुनाने लगे अन्त में भृङ्गीशजी ने उसको रसलिङ्ग यानी अमरनाथ क्षेत्र का माहात्म्य सुनाया १९-२०

मार्गन्तद् दर्शयामास मार्गतीर्थानि वै तथा ॥
भृङ्गीशसंहितायां यत स्वस्यां प्रोचेऽनुकम्पया २१॥

और भृङ्गीशने कृपा करके अमरनाथ जी की गुहा का मार्ग और मार्ग में आने वाले तीर्थ भी उन महात्मालोगों को सुनाए जो अपनी संहिता में उन्हों ने पहले ही से कथन किए हुए थे ॥ २१ ॥

तदुक्तयात्रया यन्तस्तदा सर्वे च मानवाः ॥
लोकद्वयसुखं भुक्त्वाऽमरगाथोक्तबोधिताः ॥२२॥
ब्रह्मैक्यकारितस्वान्तवृत्तयो मोक्षमाप्नुवन् ॥

एवं बहुतिथे काले याति लोका यदा प्रिय ॥२३॥
रक्षोगणैर्भृशं क्लिष्टा मार्गे भृङ्गीशबोधिते ॥
मेलारूपेण संयातुं प्रवृत्ता विघ्नबाधिताः ॥२४॥

उस समय भृङ्गीश जी की कथन की हुई यात्रा के अनुसार चलनेहारे तथा अमरनाथ जी की अमरकथा को सावधान होकर श्रवण करने वाले सम्पूर्ण पुरुष इस लोक में तथा लोकान्तर में सुख को भोग कर ब्रह्मध्यान में एकाग्रवृत्ति हो कर मोक्ष पद को प्राप्त होते हुये। इस प्रकार यात्रा करते हुए उनके जब बहुत काल व्यतीत हो गया तो हे प्रिय! जब लोग भृङ्गीश के कथन किये मार्ग में भी राक्षसगणों से पीडित होने लगे तो तब वे सब विघ्नों से दुःखी हुए २ मण्डली बना कर यात्रा करने लगे ॥ २१—२४ ॥

पुनःसर्वे मिलित्वा ते चक्रुर्भृङ्गीशचिन्तनम् ॥
प्रादुर्भूतः स ब्रह्मर्षिः प्रोक्तवान् मधुरं वचः ॥२५॥

इस के अनन्तर उन सबों ने मिल कर भृङ्गीश जी का फिर ध्यान किया। तब वह ब्रह्मऋषि भृङ्गीश जी प्रकट हो कर मधुर वाणी से मानो अमृत की वर्षा करते हुए बोले ॥ २५ ॥

## ( भृङ्गीश उवाच )

किमर्थं चिन्तितोऽहं वैभो महात्मन्निति प्रियाः ॥
प्रोचुस्तेऽपीह रक्षोभिर्दत्तक्लेशगणं द्विजाः ॥२६॥

योगीश्वर कहते हैं कि हे महात्मन्! फिर ( भृङ्गीश जी कहने लगे ) कि हे मेरे प्यारे लोको आप ने मुझे किस लिये फिर स्मरण किया है इतना सुन कर द्विजादि यात्रियों ने कहा कि महाराज हमें राक्षसगण बहुत दुःख देते हैं इस कारण हमने आपका चिन्तन किया है २६॥

( भृङ्गीश उवाच )

अहं लघुतरं वच्मि सूपायं वः प्रशान्तये ॥
एका यष्टिमर्या दत्ता राजशासनहेतवे ॥२७॥

(फिर भृङ्गीश बोले) कि मैं आप को आप के चित्त की शान्ति के लिये बहुत छोटा और अच्छा उपाय कहता हूँ वह उपाय यह है कि मैं ने यहां के राजा नागेश्वर को राज्यशासना के लिये एक छड़ी (दण्ड) दे रखी है ॥ २७ ॥

महादेवात् समादाय प्रार्थनाशततो द्विजाः ॥
तत्तकाय सुयोग्याय शिवभक्तियुताय च ॥२८॥

हे द्विजो वह छड़ी मैंने शतशः प्रार्थना कर महादेव जी से ली थी और महादेव जी के योग्य भक्त तक्षक नाम नागराज को दी थी ॥२८॥

वरश्च दापितस्तस्मै विभोरेष मया तदा ॥
दीनबन्धोर्दयासिन्धोः सत्यसन्धात्कलानिधेः२९।

और अनाथों के रक्षक, दया के समुद्र, सच्ची प्रतिज्ञा वाले कलाओं के निधि महादेव जी से उस नागराज को वर भी दिलवाया था ॥ २९॥

राजस्वन्येषु मेंऽशोऽस्ति नृपः कश्मीरमण्डले ॥
यो यो द्विजातिर्भविता तं स्वरूपं तु वित्त मे॥३०॥

( वह वर था कि और सब राजाओं में मेरा एक अंश होता है परन्तु जो द्विज जाति का काश्मीरमण्डल का राजा होगा वह मेरा साक्षात् स्वरूप जानना ॥३०॥

अतो गच्छत राजानं दृष्ट्वा प्रार्थ्य मदाज्ञया ॥
यष्टिं कुलपतेः पार्श्वात्समदाय प्रपूज्य च ॥३१॥

श्रीपुरस्थचतुस्कस्थाः सन्नृपास्तत्प्रबन्धतः ॥
गणेशञ्च नमस्कृत्य महेशं शिवदर्शनम् ॥३२॥
यूयं राजाज्ञया तत्र मठेशाज्ञारता द्विजाः ॥
यष्टिमग्रे मठेशस्य कृत्वा पश्चात्प्रयात भोः ॥३३॥

इस लिये हे द्विजो ! आप उस नागराज के पास जा और दर्शन करके मेरी आज्ञा से उस कुलपति से (यष्टि छड़ी लेकर पूजा करें, श्रीनगर में राजा के प्रबन्ध से राजा के साथ चौक के स्थान पर (जो वर्तमान मठ में छड़ी श्री अमरनाथ स्वामी दशनामी आखाड़े के नाम से प्रसिद्ध है) स्थित हो देवों के देव शिव जी तथा गणेश जी को नमस्कार कर, हे द्विजो राजा की आज्ञा तथा मठस्वामी महान्त की आज्ञा के अनुसार मठस्वामी की छड़ी को आगे लगा कर आप उस के पीछे यात्रा करें ॥ ३१—३३ ॥

मार्गे तीर्थगणं नत्वा शक्त्याऽभ्यर्च्य विधानतः ॥
श्रावणे पूर्णिमायाञ्च सुधालिङ्गं प्रपश्यत ॥३४॥

इस प्रकार मार्ग गत तीर्थदवों का यथाशक्ति विधि के अनुसार पूजन करके श्रावण की पूर्णमासी ( पून्यों ) के दिन रसलिङ्ग महादवजी का दर्शन करा करो ॥ ३४ ॥

एवं सदा सदाचारो मार्गे वः कल्पितो मया ॥
प्रबन्धकरणं धर्म्मो राज्ञो वै यात्रिणां तथा ॥३५॥
राज्ञो भक्तिस्तथान्योन्यं यूयं सुखमवाप्स्यथ ॥
सदाचारविहीनस्य यात्रासाफल्यमत्र वै ॥३६॥
न कदाचिद्भवेत्साधो विघ्नबाहुल्यमापतेत् ॥
इत्येवमुक्त्वा भृंगीशस्तत्रैवान्तर्दधे पुनः ॥॥ ३७

हे यात्रिलोगो मैंने आप लोगों को मार्ग में जैसा कि सदा अच्छा आचरण करना चाहिये सो कथन कर दिया है, इस यात्रा का प्रबन्ध करना राजा का धर्म है। और राजभक्ति करना यात्रियों का धर्म है। इस प्रकार आपस में वर्ताव करते हुए तुम परमसुख को प्राप्त होगे। और जो पुरुष सदाचार से हीन होकर यात्रा करेगा उस की यात्रा निष्फल होगी। प्रत्युत मार्ग में उसको बहुत विघ्न प्राप्त होंगे। इस प्रकार कथन कर भृङ्गीश जी फिर वहां ही लीन हो (छिप) गये ॥ ३५—३७ ॥

जनाः सर्वे मिलित्वा वै राजपार्श्वे गतास्तदा ॥
निवेद्य सकलं वृत्तं चतुष्कं परितः स्थिताः ॥३८॥

इस के अनन्तर सब लोग मिल कर राजाके पास गये और अपना सम्पूर्ण वृतान्त निवेदन कर चतुष्कोण थड़े पर आकर स्थित होगये॥३८॥

राजापि तत्क्षणन्तत्र प्रतीक्षां कुर्वतो हि तान् ॥
समागत्य समाश्वास्य यष्टिं कृत्वाऽग्रतः स्थितः॥३९
पूजयित्वा गणाध्यक्षं यष्टिं ग्रन्थं च वाचकम् ॥
कथामारभ्य भूपालं दृष्ट्वाज्ञां परिगृह्य च ॥४०॥
मठेशाज्ञामनुसृत्य यात्रा वृत्तास्ति तद्दिनात् ॥
तेनापि नागराजेन वरो दत्तोऽस्ति भूतले॥४१॥

राजा भी वहां आकर प्रतीक्षा कर रहे उन यात्रियों को धैर्य देकर छड़ी को आगे कर विराजमान होगये ॥ ३९ ॥

यात्रि लोग भी गणेश जी तथा छड़ी की पूजा कर और महाराज का दर्शन कर तथा उन से आज्ञा ले नियममें स्थित होगये। मठस्वामी की आज्ञानुसार तब उस दिन से यात्रा का प्रारम्भ हुआ और नागेशजी ने भी वरप्रदान दिया हुवा है॥ ४०—४१ ॥

यष्टिमग्रे विधायैवं मठेशाज्ञानुसारतः ॥
भवत्वविघ्ना यात्रेयं हीयेतांशोपि नो विधेः ॥४२॥
काश्मीरे यो भवेद्राजा स प्रबन्धं विधास्यति ॥
आज्ञां दास्यति गत्वा च चतुष्कं दर्शनं तथा ॥४३॥
समस्ते भारते वर्षे नागराज्यं पुराऽभवत् ॥
छत्रं यष्टिश्च तस्यैव ह्यद्यापि दृश्यते खलु ॥४४॥
ततस्तन्मार्गगा लोकाः सर्वसौख्ययुता स्थिताः ॥
एवं परम्पराचारो म्लेच्छराज्येऽप्यखण्डितः ॥४५॥
अनेन विधिना प्राप्य ह्यमरेशसुधावपुः ॥
तत्र दृष्ट्वा सुधाङ्गिलं कथां श्रुत्वा जनैः सह ॥४६॥

(वह वर यह है) कि हे निष्पाप द्विजो! मठ स्वामी की आज्ञानुसार छड़ी को आगे लगाकर यात्रा करने हारे यात्रीयों को मार्ग में किसी प्रकार के विघ्न न होंगे यदि पूर्व कही हुई विधि का कोई अंश भी हीन न होगा ॥ ४२ ॥ कश्मीर मण्डल में जो राजा होगा वह इस यात्रा का प्रबन्ध करेगा, और चतुष्कोण स्थान पर जो श्रीअमरनाथ जी की छड़ी का चौक है वहां कश्मीर का राजा जा कर दर्शन देगा तथा यात्रा प्रारम्भ की आज्ञा भी देगा ॥ ४३ ॥ सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रथम नागों का ही राज्य था क्योंकि यष्टि और छत्र उसका चिन्ह अब तक भी वर्तमान है ॥ ४४ ॥ तब उसके कथन किए पर चलते हुए पुरुष सम्पूर्ण सुख से युक्त हुए, यह परम्परा से प्राप्त आचार म्लेच्छराज्य में भी अखण्डित ( अटूट ) रह ॥ ४५ ॥ पूर्वोक्त विधि से अमरनाथ जी की बर्फ से बनी हुई मूर्ति को प्राप्त हो, तथा उसका दर्शन कर और यात्रियों के साथ कथा को उक्त विधि से श्रवण कर प्राणिमात्र

तदुक्तविधिना यात्री संसृतिं सन्तरिष्यति ॥
यः कश्चिदाचरेदेवं भोगमोक्षफलं भजेत् ॥४७॥

इस संसार सागर से पार हो जाता है। जो कोई पुरुष इस प्रकार आचरण करता है वह दोनों लोकों में सुख भोग कर अन्त में मोक्ष पद को प्राप्त होता है ॥ ४६-४७ ॥

( मठेश उवाच )

महात्मन् सत्यवचसः कृपया ते कथामिमाम् ॥
आकर्ण्य कृतकृत्योस्मि जातं मे सफलं वयः॥४८॥
श्रुतं साधो मया सर्वं विधानं मुखतस्तव॥
देवनाथस्य यात्रायाः सुखदं जगतां सदा॥४९॥
अधुना तु ततः श्रोतुं सुधालिङ्गस्य पावनीम् ॥
कथामिच्छामि सुखदां येन मोक्षो भवेन्मम॥५०॥

( मठेशजी बोले )

हे माहात्मन् सत्यवादी आप की कृपा से अमरकथा सुनकर मैं कृतार्थ हो गया हूं और मेरी अवस्था ( आयु ) सफल होगई है ॥४८॥ हे साधो मैं ने आपके मुखारविन्द से सर्वदा काल संसार को सुख देने वाली श्रीअमरनाथ जी की विधि सुन ली है ॥ ४९ ॥ अब मैं श्रीअमरनाथ जी की पवित्र करने वाली अमरकथा जो कि भैरवजी ने भैरवी को सुनाई है सुनना चाहता हूं जिस के श्रवण करने से मैं मोक्ष पद को प्राप्त हो जाऊं ॥५०॥

( योगीश उवाच )

श्रुतं त्वया यदुक्तं मे यात्राया वर्णनं खलु ॥
भृङ्गीशसंहिताप्रोक्तं पापत्रयविनाशनम् ॥५०॥

या कथा श्राविता तेन भृङ्गीशेन महात्मना ॥
समाहात्म्या बुधेभ्यो वै तच्छृणुष्व वदामि ते ॥५२॥

॥ इति श्रीमदमरकथोपोद्घताध्यायः सम्पूर्णः ॥

( योगीश्वर जी बोले )

जो कुछ मैंने यात्रा सम्बन्धी इतिहास आप को सुनाया है सो आप ने श्रवण किया है यह इतिहास भृङ्गीश संहिता में भृङ्गीश जी ने कथन किया है। और मन—कर्म-वाणी से किये हु. तीन पापों के नाश करने हारा है ॥ अब मैं वो इतिहास जो महात्मा भृङ्गीशजी ने उन महात्माओं को सुनाया था आप को सुनाताहूं आप सावधान हो कर श्रवण करें ॥ ५१-५२ ॥

॥ इति श्री अमरकथा का ( पहला अध्याय ) उपोद्घात सम्पूर्ण हुआ ॥

——:०:——

# श्रीयुतगिरिजाधिपतये नमः श्रीगुरवे नमः ।

शान्तरूपं त्रिनेत्राख्यं चन्द्रभालमुमापतिम् ॥
विश्वरूपं गुणातीतं जगतां कारणं विभुम् ॥ १ ॥
जितकालं महाकालं कण्ठेकालं कलानिधिम् ॥
आदिदेवं महादेवं चिन्तये ह्यात्मरूपिणम् ॥२॥

( अथ भाषाटीका लिख्यते )

गुरुपदपङ्कजरेणु से निजमनमुकुर सुधार ॥
अमरकथा वर्णन करूं जो दायक फल चार ॥ १ ॥
भाषा में भाषण करी अमरकथा गुणग्राम ॥
अमरचन्द्रिका ठान लिया इसका यह शुभ नाम ॥ २ ॥

शान्त स्वरूपतीन नेत्रों वाले, चन्द्रमा से विराजित है मस्तक जिनका वे, पार्वती के स्वामी विश्वस्वरूप गुणों से रहित जगत के कारण सर्व व्यापक मृत्यु को जीतने हारे अर्थात् भूत भविष्यत् वर्तमान कालत्रय में वर्तमान महाकालस्वरूप तथा श्यामकण्ठ को धारण करने हारे सम्पूर्ण कलाओं के निधि सर्व प्रकाशमान वस्तुओं को उत्पन्न करने वाले और सब देवताओं के पहले गिनने योग्य आत्मस्वरूप श्रीशिव भगवान् को उपासना करता हुआ ध्यान करता हूं, अर्थात् जब तक उपासक उपास्यस्वरूप ध्यान में मग्न न हो तबतक उसकी उपासना फलदेने वाली नहीं होती ॥ १—२ ॥

## श्रीभैरव्युवाच

श्रावं श्रावं महादेव महिमानमनुत्तमम् ॥
पुण्यं ह्यनन्तनागस्य सूर्यक्षेत्रस्य वै तथा ॥३॥

यह भैरव और भैरवी जी महादेव तथा पार्वती का अवतार हैं यह

कथा आगे आवेगी इस जगह इस की केवल सूचना ही दी है, वो भैरवी अवतार पार्वती जी बोले—कि हे देवन के देव मैंने सूर्यक्षेत्र अर्थात् पटन और अनन्तनाग की सब से उत्तम—महिमा अनेक बार श्रवण की है॥३॥

अधुना श्रोतुमिच्छामि यात्राममरनाथजाम् ॥
यां श्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मान्तरकृतैरघैः ॥४॥

अब मैं अमरनाथ जी की यात्रा की महिमा श्रवण करना चाहती हूं जिस के श्रवण करने से पुरुष जन्मान्तर कृत पापों से रहित हो जाता है ॥४

पुनश्च रसलिङ्गस्य महात्म्यं वक्तुमर्हसि ॥
अङ्गभूतानि तीर्थानि यान्यत्र जगदीश्वर ॥५॥

हे जगत् के स्वामिन् इसके अनन्तर आप श्रीअमरनाथजी के रसलिङ्ग का माहात्म्य तथा मार्ग के तीर्थों की महिमा वर्णन करें ॥ ५ ॥

तत्पूजां तद्विधिश्चैव वदस्व दयया प्रभो ॥
यात्रामकृत्वा देवस्य यो लिङ्गं पश्यति प्रभो ॥६॥
स कां गतिं प्रयातीह वद शीघ्रं दयानिधे ! ॥

भैरव उवाच

साधु साधु महाभागे पृष्टं यद्धितकाम्यया ॥७॥
लोकानां तत्प्रवक्ष्यामि सर्वलोकहिताय वै ॥
यात्राममरनाथस्य कृत्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥८॥

हे सर्वस्वामिन् रसलिङ्ग महादेव जी की पूजा किस प्रकार करनी चाहिये तथा उस पूजा में क्या विधि है और जो पुरुष शास्त्रोक्त विधि को

अतिक्रान्त छोड़कर यात्रा करके रसलिङ्ग का दर्शन करता है वह किस गति को प्राप्त होता है हे दयासागर आप मेरी प्रति यह भी शीघ्र कथन करें ६-७

(श्रीभैरव जी बोले)

हे उत्तम भाग्यों वाली तुम ने लोगों के हित के लिये उत्तम प्रश्न किया है मैं तुम को वह उपाय कथन करता हूं जो सब लोगों के हित करने वाला है, सो सुनिये पहल पुरुष उस श्रीअमरनाथ की शास्त्रानुसार यात्रा करके शुद्धि को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

बाह्याभ्यन्तरशुद्धस्तु रसलिङ्गस्य दर्शने ॥
चतुर्वर्गफलादाने क्षमो भवति पूरुषः ॥९॥

पुरुषमात्र रसलिङ्ग के दर्शन करने से बाह्य और अभ्यन्तर शुद्ध हुआ धर्म अर्थ काम मोक्ष रूपी चार फलों के प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है ॥६॥

यात्रामकृत्वा देवेशि! लिङ्गं पश्यति यो नरः ॥
स याति नरकं घोरं तीर्थद्रोही भवेत्तथा ॥१०॥

और जो पुरुष वा स्त्री शास्त्रानुसार यात्रा को न करके उक्तलिङ्ग का दर्शन करता है वह घोर नरक को प्राप्त होता है तथा तीर्थद्रोही नाम से प्रसिद्ध होता है ॥ १० ॥

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि यात्राममरनाथजाम् ॥
या श्रुत्वापि नरः पुण्यं प्राप्नुयात्तीर्थजं प्रिये॥११॥

हे देवि आप श्रवण करो मैं आप के प्रति श्री अमरनाथ जी यात्रा का माहात्म्य सुनाता हूं जिस के श्रवणमात्र से भी पुरुष तीर्थ के कुछ एक पुण्य को प्राप्त हो सकता है ॥११॥

यात्रान्तःप्राप्यतीर्थौघमनासेव्य तु यो नरः ॥
प्रयात्यमरक्षेत्रेऽपि तस्य यात्राऽफला भवेत् ॥१२॥

जो पुरुष यात्रा के मार्ग में प्राप्त हुए तीर्थों पर यथा विधि स्नान दान ध्यान नहीं करता और श्रीअमरनाथ जी की गुहा में भी प्राप्त हो जाता है उस की यात्रा निष्फल हो जाती है ॥ १२ ॥

ऊर्ध्वाधोगमनाद्देवि ! द्विधा यात्रा प्रदर्शिता ।
ऊर्ध्वयात्रा मुमुक्षूणां प्रणायामेन योगिनाम् १३॥

हे देवि ! ऊर्ध्व ( ऊपर ) और अधो ( नीचे की ) की ऐसे दो प्रकार की यात्रा दिखाई है । ऊपर की यात्रा मोक्ष को चाहने वाले योगियों को प्राणायाम से होती है । जो लोग उसके अधिकारी नहीं इनको अधिकार प्राप्त करने के वास्ते नीचे की पादचार से यानी पैदल यात्रा कही है ॥ १३ ॥

अपान प्राणयोरैक्ये राजमार्गेण वै गते ।
ब्रह्मद्वारविलीनेऽत्र मुक्तिर्भवति निश्चिता ॥१४॥

सो यात्रा इस प्रकार है प्राण तथा अपान वायु के एक होने पर योग मार्ग से दशमद्वार में जिसे ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं वहां पर प्राणों को लीन कर पुरुष निश्चय से मुक्ति को प्राप्त हो जाता है ॥ १४ ॥

यथेष्टकामदा यात्रा द्विधा सेव्या फलेप्सुभिः ।
बाह्याधोयात्रया पाप-क्षये शुद्धः पुमान्यदा ॥१५॥

यह दोनों प्रकार की यात्रा चतुर्विध फल की इच्छा करने हारे पुरुषों ने सेवन करनी चाहिये अधो यात्रा से पुरुष के सम्पूर्ण पाप क्षय हो जाने से उसकी शीघ्र चित्त शुद्धि हो जाती है ॥ १५ ॥

अधिकारी भवेत् सद्यः हठराजादियोगतः ।
तीर्थेऽमरकथां श्रुत्वा शिवप्रोक्तां मनीषितः ॥१६॥

इस प्रकार हठ योग तथा राजयोग से और तीर्थ पर किसी अच्छे पण्डित से शिवरूप भैरव से कथन की हुई अमरकथा को एकाग्र चित्त से

श्रवण करके पुरुष ज्ञान का अधिकारी हो जाता है ॥ १६ ॥

तदुक्तमार्गगो यः स्यादमरो निश्चितं भवेत् ।
तत्रादौ संप्रवक्ष्यामि अधोयात्राञ्च पुण्यदाम् ॥१७॥

इस प्रकार कथन किये मार्गानुसार यात्रा करने हारे पुरुष योग ज्ञान काण्ड के अधिकारी होकर ज्ञानयोग द्वारा निश्चय से मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं इसी लिए प्रथम पुण्य देने वाली अधोयात्रा का वर्णन किया जाता है ॥ १७ ॥

श्रीपुरे गणपं नत्वा सङ्कल्प्यैव ससार्थकः ।
सांप्रदायिकरीत्या वै चतुष्कादौ शिवं भजन् ॥१८॥
निर्गत्य नगरादादौ तीर्थे षोडशसंज्ञके ।
स्नात्वा शिवपुरं गच्छेदुपस्पृश्य ततः परम् ॥१९॥

श्रीनगर में गणेश जी का पूजन कर अपने साथियों के साथ प्रतिज्ञा संकल्प कर छड़ी के थड़े पर स्थित हो संप्रदाय की रीति (जो पहले प्रकरण में (पृ० ७ पं० २) राजा का दर्शन और वहां के महान्तजी की आज्ञाग्रहण आदि लिखी है) से शिव जी का स्मरण करता २ नगर से निकल कर षोडश (शुराहूयार) नामक तीर्थ पर स्नान तथा आचमन कर शिवपुरी (शिवपुर) (पांपुर) की ओर यात्रा करे ॥ १८-१९ ॥

पुण्ये गङ्गाम्भसि स्नात्वा पद्द्दृष्टौ प्रणतः प्रिये !
तत्रार्चयेन्महादेवं तर्पयेद्भोजयेत्तथा ॥२०॥
देवानृषीन् द्विजान्हेमगोवस्त्रान्नं विसर्जयेत् ।
ततःपद्मपुरे सिद्धक्षेत्रे स्नात्वाऽग्रतो व्रजेत् ॥२१॥

हे प्रिये ! वहां (मांदठन) ऐसे प्रसिद्ध तीर्थ में गङ्गा जी के दर्शन कर और प्रणाम कर पुरुष गङ्गाजल में स्नान कर महादेव जी का पूजन करे

देवता और ऋषियों को तर्पण करे, और ब्राह्मणों को भोजन कराए तथा स्वर्ण अन्न वस्त्रादि दान दे विसर्जन करे। तब पद्मपुर में जो सिद्धों का क्षेत्र है वहां स्नान कर आगे चले ॥ २०–२१ ॥

वारीशे रुद्रगङ्गाख्ये स्नात्वा दत्त्वा व्रजेत्ततः ।
युवत्यां तत्र मिष्टोदे स्नात्वाऽथावन्तिकां श्रयेत् ॥२२

( वरीश–वारसु , ऐसे प्रसिद्ध स्थान में रुद्रगङ्गानामक उत्तम तीर्थ पर स्नान कर तथा यथाशक्ति दान देकर युवती ( अब ब्रारी ) इस नाम वाले तीर्थ पर और मिष्टोद ( मिठवन्य ) नामक तीर्थ पर स्नान कर अवन्ती (बांतीपुर) की ओर यात्रा करे । २२ ॥

तत्र स्नात्वा सिद्धक्षेत्रे महानागं समाश्रयेत् ।
हरिद्राख्यं गणपतिं गत्वा विघ्नेश्वरार्चनम् ॥२३॥
कृत्वा देवानृषीन् पितॄस्तर्पयेद्विधिवन्नरः ।
हव्यकव्यादिभिः सर्वे विघ्नाः पापानि च प्रिये ! ॥२४
तत्क्षणान्नाशमायान्ति गणनाथप्रसादतः ।
बलिहारे ततो यायात् क्षेत्रे स्नात्वा व्रजेत्ततः ॥२५॥

वहां सिद्धों के क्षेत्र में स्नान कर महानाग ( मिहरनाग ) की शरण ले वहां हारीपारी गांव में हरिद्राख्य गणपति के समीप जाकर विघ्नहारी गणपति जी का पूजन करे पुरुष देवताओं और ऋषियों का तर्पण करे वहां देवता तथा पितृतर्पण दान करने से गणपति जी की प्रसन्नता से पुरुषों के सम्पूर्ण विघ्न और पाप नाश हो जाते हैं–अनन्तर इसके बलिहार नामक क्षेत्र ( वाहियार गांव ) में जाकर वहां स्नान कर आगे चले ॥२३-२५

ज्येष्ठाषाढं महादेवं पूजयेद्गणनायकम् ।
नागानाश्रमे हस्तिकर्णे नत्वोपस्पृश्य च व्रजेत् २६

इसके अनन्तर नागाश्रम (बाग हाम) में जिस को हस्तिकर्ण (हस्तिगण) भी कहते हैं वहां संगम के समीप जाकर ज्येष्ठाषाढ नामक गणस्वामी महादेव का पूजन करे और नमस्कार तथा आचमन कर आगे यात्रा करे ॥ २६ ॥

स्नात्वापस्पृश्य वा वारि तदीयं त्रिमलापहम् ।
ततो गच्छेच्चक्रतीर्थे स्नात्वा देवर्षितर्पणम् ॥२७॥
तत्र कृत्वाहेममयं चक्रं दद्याद् द्विजन्मने ।
हुत्वाजप्त्वा विधिवद् व्रजेद्देवकतीर्थकम् ॥२८॥

शरीर मन और वाणी के तीनों मलों के नाश करने हारे तीर्थजल में स्नान कर वा तीर्थ से आचमन कर चक्रनामक तीर्थ (चक्रधर) को यात्रा करनी चाहिये वहां स्नान कर देवता और ऋषियों का तर्पण कर सुवर्ण का चक्र बनवा कर ब्राह्मण के प्रति दान करके विधिवत् हवन जप करके देवक तीर्थ (देव कयार) को यात्रा करे ॥ २७—२८ ॥

तत्र स्नात्वा हरिश्चन्द्रं तीर्थं पुण्यं समाश्रयेत् ।
तत्र स्नात्वार्चयेद्देवं महादेवं वृषध्वजम् ॥२९॥
देवानृषीन् पितॄंश्चैवतर्पयेद्धव्यकव्यकैः ।
गांहिरण्यंतिलान्वस्त्रं भक्ष्यंभोज्यञ्चशक्तितः ॥३०
दद्यात्पात्रेषु ब्रह्माण्डं तर्पितं तेन सम्भवेत् ।
ततो भुक्त्वा च देवेशि तीर्थं नत्वा सुरेश्वरि ॥३१॥

तत्र लम्बोदरीवारिस्नानंकुर्य्यादतन्द्रितः ।
स्थेलवाटं ततो गच्छेत्तत्र स्नात्वामृतस्रुतौ ॥३२॥

ततो व्रजेत सूर्यस्य गुहवाटं सुरेश्वरी ।
सूर्याश्रमे सूर्यगंगामवगाह्यसमर्चयेत् ॥३३॥

वहां स्नान कर पवित्र हरिश्चन्द्र तीर्थ (विजय विहार गांव) पर पहुंचना चाहिये और वहां स्नान कर तथा वृषभध्वज महारे देवजी की पूजन कर हव्य और कव्य नामक अन्न से देवता तथा ऋषियों का तर्पण कर गौ तथा सुवर्ण तिल और खाने पहनने वाली वस्तुएं यथाशक्ति जो पुरुष सत्पात्र को दान देता है वह ब्रह्माण्ड को तृप्त करने के फल को प्राप्त होता है—हे देवेशि अनन्तर इस के वहां भोजन कर और नमस्कार कर आगे चले, आगे लम्बोदरी नदी पर आलस से रहित होकर पुरुष स्नान करे और सूर्याश्रम में जिसको मटन कहते हैं सूर्यगंगा में स्नान कर पुरुष सूर्य भगवान की पूजन करे ॥ २६—३०—३१—३२—३३ ॥

भुक्तिमुक्तिप्रदं सूर्यं गामश्वं कनकं तथा ।
अन्नानि वसनीयानि द्विजेभ्यः प्रतिपादयेत् ॥३४॥

वहां श्रीसूर्य का पूजन संसार के भोग तथा मुक्ति के देने हारा है, वहां ही यात्री लोगों को अन्न वस्त्र आदि दान कर द्विजों के प्रति देने चाहिये ॥ ३३ ॥

सूर्यक्षेत्रन्तु पितॄणां दुःखितानां स्वकर्मतः ।
तेषामुद्धरणार्थाय प्रार्थितं मुनिभिः सुरैः ॥३५॥

सूर्य क्षेत्र (मटन) नामक तीर्थ, अपने कर्मों से दुःखी हुए पितरों के उद्धार ( सद्गति ) के लिये देवता और मुनियों ने प्रार्थना किया है ॥३५॥

तत्रकुर्य्यात्पितृमुक्तिं पिण्डैर्दानादिभिः प्रिये! ।
कुण्डद्वयं समालोक्य मत्स्यरूपान्सुरानपि ॥३६॥
अन्नैर्नानाविधैर्भक्त्या स्नात्वा तृप्तान् विधायतान् ।
श्राद्धं पश्चिमवाहिन्यां तत्रकुर्य्याद्धि मानवः ॥३७॥

वहां दो कुण्डों का दर्शन कर तथा उन में मत्स्यरूप देवताओं का दर्शन कर हे देवि पिण्डदानादियों से पितरों की मुक्ति करे मनुष्य इस क्षेत्र में अनेक प्रकार के मन्त्रों से उन देवता स्वरूप मछलियों की तृप्ति कर पश्चिमवाहिनी गङ्गा के प्रवाह में स्नान करके पितरों के उद्धारार्थ श्राद्ध करे ॥ ३६—३७ ॥

ब्राह्मणान् भोजयेदत्र श्राद्धकाले विशेषतः ।
ऊर्ध्वाधोयात्रिकानां हि संगतिरत्र चाश्रमे ॥३८॥

वहां श्राद्धकाल में विशेष कर ब्राह्मणों को भोजन दे। और इसी आश्रम में ऊर्ध्वयात्री तथा अधोयात्रियों का मिलाप होता है ॥ ३८ ॥

ततः सत्कार मासाद्य स्नात्वा तत्तीर्थवारिणि ।
सम्पूज्य चात्र गणपं व्रजेद्भद्राश्रमं ततः ॥ ३९ ॥

इन के अनन्तर सुफल ले कर सत्कर (सीकरस) स्थान को प्राप्त होकर, इस तीर्थ में स्नान कर तथा गणेश जी की पूजन कर (बदुर नाम वाले) भद्राश्रम को जाना चाहिये ॥ ३९ ॥

हयशीर्षाश्रमे पुण्ये तथाऽश्वतरनागजे ।
सौरगंगा जलेस्नात्वा कृतनित्यक्रियाद्विजाः॥४०॥

पवित्र हयशीर्ष (सिरहाम) नाम आश्रम में तथा अश्वतर क्षेत्र में सौर गंगाजल में स्नान कर द्विजमात्र सन्ध्यावन्दनादि अपनी नित्य क्रिया करके सरलक (सलर) नाम ग्राम की ओर जावें ॥ ४० ॥

गच्छेत्सरलके ग्रामे जलेऽनन्तस्यपावने।
तत्रस्नात्वा ततोगच्छेत् वालखिल्यायनं परम्॥४१॥

वहां सरलक नाम ग्राम में पवित्र अनन्त नाग तालाब के जल में स्नान कर उत्तम वाल खिल्याश्रम (ख्यलन) गांव को जाना चाहिये ॥४१॥

तत्र नारायणं देवमर्चयेच्च जगद्गुरुम्।
अनन्तभोगमोक्षेष्टसाधनं विश्वव्यापिनम्॥४२॥

वहां वालखिल्य नामक तीर्थ पर जगद्गुरु नारायण देव की यात्री लोग पूजन करें जो भगवान् सर्वव्यापी हैं और नाना प्रकार के भोग मोक्ष—तथा इष्ट फल के देने वाले हैं ॥४२॥

स्नात्वा तत्क्षेत्रपुण्योदे दानं दत्वा स्वशक्तितः।
महावने भीमरूपं विघ्नेशं समुपाश्रयेत्॥४३॥

उस पवित्र जल वाले (कुलर) वाल खिल्प तीर्थ पर स्नान कर तथा शक्त्यानुसार दान देकर महावन (गणेश बल) में विघ्न विनाशक भीम रूप गणपति जी का आश्रय लेवे ॥४३॥

नत्वा हुत्वा च विधिवन्मोदकैः पायसैस्तथा।
बलिं निवेदयेद्भक्त्या श्रीगणेशाय सुन्दरि!॥४४॥

हे सुन्दरि वहां प्राप्त होकर नमस्कार तथा हवन कर लड्डू तथा खीर का नैवेद्य भक्ति से श्री गणेश जी को लगाए ॥४४॥

प्रशान्तपापविघ्नोऽथ क्षेत्रं मामेश्वरं व्रजेत्।
दृष्ट्वा मामेश्वरं लिङ्गं स्नात्वा मामेशवारिणि॥४५॥
तत्क्षणान्मुच्यते साध्वि रोगेभ्यः पापसञ्चयात्।
हुत्वा दत्वा च विधिवत् ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ४६

इसके अनन्तर (बाद) पाप और विघ्नों से रहित हुआ २ पुरुष मामेश्वरक्षेत्र को प्राप्त होवे उस स्थान पर मामेश्वर ( मामलेश्वर ) भगवान् का दर्शन करने तथा तीर्थ जल में स्नान करने से हे साध्वि ! पुरुष उसी समय रोग तथा पाप समूह से छूट जाता है फिर वहां विधि से स्नान और दान देकर ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥ ४५–४६ ॥

ततो व्रजेद्भृगुपतेः क्षेत्रं सर्वमलापहम् ।
स्नात्वा दत्त्वा च विधिवत्तत्र सम्पूजयेद्धरिम् ॥४७

इसके अनन्तर सम्पूर्ण मलों को दूर करने हारे भृगुपति जी के क्षेत्र (पहलगांव) को प्राप्त होवे वहां विधि के अनुसार स्नान दान कर हरि का पूजन करे ॥ ४७ ॥

ततो रञ्जिवनं पश्येद्वर्तुलाकारकोपलम् ।
स्नानं कृत्वा ततः सीतारामलक्ष्मणकुण्डके ॥४८

इसके आगे रञ्जिवन में गोलाकार पाषाण की मूर्त्ति देवादिदेव का दर्शन करे। और वहां सीता राम तथा लक्ष्मण कुण्ड में स्नान कर आगे चलदे ॥ ४८ ॥

ततो गत्वा नीलगङ्गां तीर्थोदमवगाह्य च ।
प्रसन्नचित्तवृत्तिश्च ततः स्थाण्वाश्रमं व्रजेत् ॥४९

आगे नीलगङ्गा के पवित्र जल में स्नान करके प्रसन्न चित्त यात्री स्थाणु आश्रम (थानिन्यु) को जावे ॥ ४९ ॥

सरस्वतीं नदीं दृष्ट्वा स्नात्वा पापात्प्रमुच्यते ।
ततश्चोषसि पोषाख्यं गिरिमुलङ्घ्य पावनम् ॥५०

तदुपरि च शेषस्य नागस्य विधिपूर्वकम् ।
दर्शनं स्पर्शनं पूजां कृत्वा गच्छेदतः परम् ॥५१॥

वहां सरस्वती नदी का दर्शन कर तथा उसमें स्नान कर पुरुष पापों से मुक्त हो जाता है, तब प्रातःकाल पवित्र पोषाख्य पर्वत पर चढ़ कर उसके ऊपर विधिपूर्वक शेषनाग जी ( सिसिरम नाग ) का दर्शन स्पर्शन तथा पूजन कर आगे यात्रा करे ॥ ५०–५१ ॥

वायुवर्जनदेशे तु विधाय मठिकां ततः ।
तत्राश्रमपदे स्थित्वा संस्मरेदमरेश्वरम् ॥५२॥

आगे वायुवर्जन ( वावजन ) देश में पत्थरों से छोटी सी मढ़ी बनाकर उस आश्रम में स्थित होकर अमरेश्वर भगवान् का स्मरण करे ॥ ५२ ॥

ततः पञ्चतरङ्गिण्याः पञ्चस्रोतस्सु सुन्दरि! ।
स्नायाद्देवर्षिपितृंश्च तर्पयेत्सुसमाहितः ॥५३॥

हे सुन्दरि! अनन्तर पञ्चतरङ्गिणी नदी के पांच प्रवाहों में स्नान करे और देवता ऋषि तथा पितरों का सावधान होकर तर्पण करे ॥ ५० ॥

आरुहेद्गलशिखरं तक्षडारकं श्रयेत् ।
श्रावण्यामुषसि शैलशिखरे डामरेश्वरम् ॥५४॥
भैरवं पूजयेद्दृष्ट्वा भक्त्याऽथ सुरसुन्दरि ! ।
दीपं घृतमयं पूपमोदकान् विनिवेदयेत् ॥५५॥

श्रावणी के दिन प्रातःकाल भैरोंघाटी नाम से प्रसिद्ध पर्वत की चोटी पर यात्री लोग चढ़ें डामरक की शरण लें और हे सुन्दरि ! वहां डामरेश्वर भैरव का दर्शन कर भक्ति से उसकी पूजा कर घृत की ज्योति और पूड़े तथा लड्डुओं का नैवेद्य लगाए पश्चात् नमस्कार तथा परिक्रमा कर पर्वत से उतर जावे ॥ ५४–५५ ॥

परिक्रम्य च नत्वाथ पर्वतादवरोहयेत् ।
मध्यतस्तत्र गच्छन्वै प्रविशेद्गर्भवासकम् ॥५६॥
तत्र सकृत्प्रविष्टस्य न पुनर्गर्भसम्भवः ।
तस्मान्निःसृत्य देवेशि प्रपश्येदमरावतीम् ॥५७॥
यस्या दर्शनमात्रेण मर्त्योऽमर्त्यत्वमाप्नुयात् ।
तद्वार्यमृतकल्पे तु स्नात्वा भूतिं प्रलेपयेत् ॥५८॥

परिक्रमा और प्रणाम कर पर्वत से उतरते समय बीच में चलता हुवा मार्ग में जो गर्भयोनि है उस में प्रवेश करे क्योंकि उस में एकबार प्रवेश करने से पुनर्जन्म नहीं होता, उसमें से निकल कर अमरावती नदी में प्रवेश करे जिसके दर्शनमात्रसे ही पुरुष देवता हो जाता है। उसके अमृत के बराबर जलमें स्नान करके यात्री भस्मको अपने शरीर पर चढ़ावे ५६-५७-५८।

विभूतिसितदेहश्च नृत्यमानो दिगम्बरः ।
आरुहेत्पर्वतगुहां महापातकनाशिनीम् ॥ ५९ ॥

भस्म से सफेद देह होकर नग्न या भोजपत्र धारण करके नृत्य करता हुआ यात्री बडे बडे पापों के नाश करनेहारी अमरनाथ जी की पहाडी को चढ़कर गुहा में प्राप्त होवे ५९ ॥

प्रणम्य विधिवद्भक्त्या सुधालिङ्गं सनातनम् ।
नरो न लिप्यते पापैः कोटिजन्मसमुद्भवैः ॥६०॥

वहां भक्ति से सनातन (सदैव काल से रहने वाले) सुधालिङ्ग यानी बर्फ से बने हुए लिङ्गाकार महादेव का दर्शन कर पुरुष कोटीजन्म के पापों से छूट जाता है ६०

बाह्याभ्यन्तरदोषाणां क्षये तद्दर्शनं नृणाम् ।
दर्शनात्स्पर्शनाच्चापि पूजनाच्चापि वन्दनात् ६१
अमरेशस्य तल्लिङ्गं सत्यं नैवात्र संशयः ।
महापातकयुक्तानां युक्तानामुपपातकैः ॥ ६२ ॥
सर्वपापापहं नान्यत्सुलभं दुस्तरे कलौ ।
स्नानानीत्थं वितस्तायां षट्प्रोक्तानि पथोऽन्तरं ६३
त्रिंशदन्यत्र यात्रायाममरेश्वरदर्शने ।
षट्त्रिंशत्तत्वरूपाणां क्षेत्राणां परतः स्थितः ॥६४॥
इत्थं सम्प्राप्यते शुद्धः शिवधामामृतेश्वरः ।
एवं कृत्वा नरो यात्रां पश्येद् लिङ्गं रसात्मकम् ॥
स याति शिवसायुज्यं यतो भूयो न जायते ॥६५॥

इति श्रीगङ्गीशसंहितायां भैरवभैरवीसंवादे ।
अमरकथायां अमरेश्वरमाहात्म्ये
यात्रावर्णनं नाम प्रथमः पटलः ॥

---

उस अमृत रस से बने हुए सुधालिङ्ग का दर्शन पुरुष के बाहर तथा अन्तर के मलों के नाश होने से होता है । अर्थात् पुरुष संकल्प विकल्पवासनादिरहित होकर जब केवल महादेव के ही ध्यान में एकाग्रचित्त लगाता है तब भगवान् अपना दर्शन देते हैं । दर्शन स्पर्शन तथा पूजन और बन्दन से सुधालिङ्ग महापापों और उपपापों से युक्त पुरुषों के सर्व पापों को निश्चयसे दूर कर देता है। इसमें कोई सन्देह नहीं,

कलियुग में इससे अतिरिक्त और सुखाला उपाय नहीं है। इस प्रकार वितस्ता में ६ स्नान करने लिखे हैं और श्रीअमरनाथजी की यात्रा के मार्ग में १० स्नान लिखे हैं। इस प्रकार दर्शन करने से प्रथम ॥ ३६ ॥ तत्व स्वरूपक्षेत्रों को अवगाहन करने से और वहां होने वाले तत्वस्वरूप देवताओं का साक्षात् करने से उस शुद्ध परमात्मा का कल्याण पद प्राप्त होता है क्योंकि तत्वज्ञान के अनन्तर परमात्मज्ञान होता है। यह दर्शनादि शास्त्रोंका भी सिद्धान्त है। इस प्रकार पुरुष को तत्वयात्रा करके इस शिवलोक का दर्शन होता है जिसके परमपावन दर्शन से पुरुष शिवस्वरूप होजाता है फिर जन्म को प्राप्त नहीं होता ॥ ६१—६४ ॥

इस प्रकार भङ्गीश संहिता में कथन किये भैरव भैरवी के प्रश्नोत्तर रूपसंवाद में श्री अमरनाथयात्रा माहात्म्य की अमरचन्द्रिका नाम भाषा टीका का प्रथम पटल समाप्त ॥



श्री सदाशिवाय गिरिजाधिपतये नमः ।

श्रीभैरव्युवाच ।

देवदेव महादेव बाह्याभ्यन्तरशोधकम् ।
तीर्थानां संग्रहं श्रुत्वा प्रीतास्मि परमेश्वर ॥१॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि तीर्थं खिल्यायनं परम्।
स्थाने खिल्यायने पुण्ये तीर्थं नारायणाश्रमम् ॥२
यदभूद्भगवन् सिद्धं तन्मे त्वं कृपया वद ।

श्री भैरवी जी बोले ।

कि हे देवों के देव महादेवजी मैं आप से बाहर और अन्तर शोधन करने हारे तीर्थों का संग्रह सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुई हूं अब खिल्यायननामक तीर्थ जो नारायण का उत्तम स्थान तीर्थ है उसका इतिहास श्रवण कराना चाहती हूं जो सिद्ध ( स्थान ) है आप कृपा कर कथन करें ॥ २ ॥

श्रीभैरव उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि महात्म्यं पापनाशनम्॥३॥
बालखिल्यायनस्यैव चित्तशुद्धिकरं परम् ।
पुरा महर्षयः सिद्धाः बालखिल्याभिधाः शिवे ।
सुदुष्करं तपश्चेरुः नियमेनोर्ध्वरेतसः ॥४॥

श्री भैरवजी बोले ।

हे देवि श्रवण करो मैं आप को पापनाश तथा चित्त की शुद्धि के करने वाले बालखिल्य तीर्थ का महात्म्य कथन करता हूं पूर्व काल में

सुब्रह्मचारी वालखिल्य नाम महर्षियों ने नियम से बहुत कठिन तप किया। ३-४।

निराहारा यतात्मानः पादाङ्गुष्ठाग्रसंस्थिताः।
समाधिलीना ह्यभवन् सहस्रं परिवत्सरान् ॥५॥

वे महर्षि पाओं के अंगुष्ठ के सहारे निराहार इन्द्रियों की वृत्ति और चित्त वासनाओं को रोक समाधि में लीन हुए हजारों वर्षों तक तप करते रहे ॥ ५ ॥

विष्णोर्ध्यानपराः शान्ताः धृतात्मानो महौजसः।
ततश्चिरेण भगवान् विष्णुर्दर्शनमीयिवान् ॥६॥

वे महात्मा इतनी देर तक धैर्य तथा परःक्रम को धारण कर शान्त चित्त से विष्णु भगवान् का ही चिन्तन करते रहे इस से भगवान् प्रसन्न हो उन को दर्शन देते हुए ॥ ६ ॥

सामाधिं मुक्त्वा दृष्ट्वा ते भगवन्तं सनातनम्।
उत्कायोत्थाय सहसा प्रणेमुर्दण्डवन्मुहुः ॥७॥
नीलजीमूतसंकाशं प्रफुल्लजलजेक्षणम्।
शंखचक्रगदापद्मपाणिं पापहरं हरिम् ॥८॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम्।
तार्क्ष्यपृष्ठसमासीनं गिरा परमयैडयन् ॥९॥

समाधि का परित्याग कर उन महर्षियों ने भगवान् सनातन विष्णु को देखा। और उठ उठ कर शीघ्र बार बार दण्डवत् नमस्कार करने लगे ॥ ७ ॥

नीले मेघ के समान श्याम शरीर वाले तथा फूले हुए कमल के समान नेत्रों को धारण करने हारे, शंखचक्र गदा पद्म को चारों हाथों में धारण किये हुए पापों को नाश करने हारे वक्षःस्थल में श्री वत्स के

चिह्न शोभित तथा कौस्तुभमणि को धारण करने हारे सुन्दर ग्रीवा से शोभायमान गरुड़ पर असवार हुए उस सर्व व्यापक विष्णु भगवान की उच भाव भक्ति में युक्त वाणी से प्रार्थना करने लगे ॥ ८—९ ॥

वालखिल्या ऊचुः ।

महाविष्णुं प्रभविष्णुं पुराणमाद्यमृषिं शिपिविष्टं वरिष्ठम्। गरीयांसं भारसहं वसिष्ठं नागान्तकस्थं शरणं व्रजामः ॥ १० ॥ वेदात्मकं वेदवेद्यं पुराणं वरं वरेण्यं वरदं त्वां शरण्यम् । हिरण्यगर्भमादि देवाधिदेवं हिरण्यबाहुं शरणं त्वां प्रपन्नाः ॥११॥

वालखिल्य बोले ।

सब वस्तु में व्यापक सब सामर्थ्यवाले सब से पुराणे पहले ऋषि अर्थात् वेद के प्रकाश करने वाले सूर्य स्वरूप सबसे श्रेष्ठ तथा सबको उत्तमोपदेश करने हारे संसार के पालनादि भार उठाने हारे गरुड़ असवार इन्द्रियों को वश रखने वाले हे प्रभु हम आप की शरण में प्राप्त होते हैं॥१०॥

वेद स्वरूप, तथा वेदों से ही जानने योग्य, अनादि सब से श्रेष्ठ वर प्रदान करने हारे शरणागत की रक्षा करने हारे हिरण्यगर्भ नित्य प्रकाशमान सूर्यादि के देवों के अधिष्ठातृदेव सुवर्ण के समान प्रकाशमान बाहु को धारण करने हारे हे प्रभु हम आप की शरणागत हैं ॥ ११ ॥

त्रिलोकीशं लोकपालेशमीशं
लोकाधारं लोकवन्द्यं महेशम् ।
लोकेश्वरं विश्वरूपं पुराणं
लोकात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥१२॥

विततयाजा जननीमुग्ररूपां
क्षणाद्वालं तरुणञ्च क्षणात्त्वाम् ।
क्षणात्पुमांसं स्त्रीस्वरूपं क्षणात्त्वां
महानटं शरणं त्वां प्रपन्नाः ॥ १३ ॥

तीनों लोगों के स्वामी लोक पालों के भी स्वामी सब लोगो के धारण करने वाले सब के नमस्कारयोग्य देवों के देव जगत के व्यवस्था करने हारे विश्वस्वरूप सब के अन्तर्व्यापक अर्थात घट २ में विराजमान हे प्रभो हम आप की शरणागत हैं ॥ १२ ॥

बड़े उग्र ( तेज वा तीक्ष्ण ) रूप वाली प्रकृति ( माया ) को नाटकका परदा बनाकर इस संसार रूप नाटक को रचते हुए आप भी उस में अनेक रूप ( सीन ) बदल कर जैसे कभी राम कृष्ण आदि पुरुष हो कर उस में भी कभी बालक कभी युवा कभी मोहिनी आदि स्त्री रूप से नटन करने वाले महान् सूत्रधारस्वरूप हे भगवन् आप की शरण में हम प्राप्त हुए हैं ॥ १३ ॥

प्रसार्य जालं द्वेषरागादितन्तु,
दुष्टं मनःपक्षिणं प्राणमध्ये ।
दशग्राहं परिगृह्णन्तमाद्यं महानिषादं,
शरणं त्वां प्रपन्नाः ॥१४॥

राग द्वेषादिस्वरूप तन्तुजाल को पसार कर प्राणों के मध्य में मनरूपी दुष्ट पक्षी को दश इन्द्रिय रूप पासों से ग्रहण करने हारे आदि बड़े भारी शिकारी स्वरूप हे भगवन् हम आपकी शरण में प्राप्त होते हैं । १४ ।

अनाद्यन्तं सवितारमजेशं,
पुरातनं नूतनं जायमानम् ।
वेदान्तवेद्यं सांख्ययोगेन गम्यं,
भूयो भूयः शरणं त्वां प्रपन्नाः ॥१५॥

हे भगवन् ! आदि और अन्त से रहित सूर्य की तरह प्रकाश करने वाले ब्रह्मा वा महादेव के भी स्वामी सब के आदि होने पर भी वर्तमान काल में भी पूर्ववत् होने से नवीन अज होने पर भी अवतार धारण करने से जायमान अर्थात् उत्पत्ति को प्राप्त होने हारे । वेदान्त सिद्धान्त से निश्चय होने योग्य और सांख्य योग शास्त्रानुसार अभ्यास करने से प्राप्त होने योग्य हे प्रभो हम आप की बार बार शरण में प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥

श्रीभैरव उवाच ।

इत्थं स्तुत्वा महाविष्णुं प्रणम्य भक्तवत्सलम् ।
भूमौ ते पतितास्तेन पुनरुत्थापिताः प्रिये॥१६॥

श्री भैरव जी बोले ।

हे प्यारी भैरवी इस प्रकार महाविष्णु जी को नमस्कार कर वे बालखिल्य पृथवी पर गिर पड़े और उनको विष्णु भगवान् जी ने फिर अपने हाथों से उठाया ॥ १६ ॥

उवाच तां तदा विष्णुर्मेघगम्भीरया गिरा ।
तपसानेन तुष्टोऽस्मि वरयध्वं वरं शुभम् ॥१७॥

तब भगवान विष्णु जी ने मेघ के सदृश गम्भीर वाणी से उनको कहा कि मैं आप के तप से अत्यन्त प्रसन्न हूं आप वर मांगे जो आप की इच्छा है ॥ १७ ॥

दादामि वो वरं विप्रा देवासुरसुदुर्लभम् ।
श्रुत्वा तु वचनं तस्य विष्णोरमिततेजसः ॥१८॥

हे ब्राह्मणों मैं आप को वह वर देता हूं जो देवता और दैत्यों को भी दुर्लभ है । वे वालखिल्य ऋषि अनन्त पराक्रम वाले विष्णु के इस वचन को श्रवण कर बोले ॥ १८ ॥

प्रत्पूचु स्तं महादेवं वालखिल्या महर्षयः ।
त्वद्दर्शनात्परः को ऽन्यो वरः श्रेष्ठो महेश्वर ! १९
तथापि वरदात्त्वत्तो वृणीमस्तीर्थमुत्तमम् ।
यत्र वासान्महाविष्णो ! प्राप्नुमः सिद्धिमुत्तमाम्

कि हे महाराज आप के दर्शन से बढ़कर और कोई वर यद्यपि उत्तम नहीं है तथापि वर प्रदान करने हारे आप से हम यह वर मांगते हैं कि आप कृपा कर एक ऐसा उत्तम तीर्थ ( स्थान ) प्रदान करें जिस में हम लोग वहां तपश्चर्य्या करते हुए सिद्धि को प्राप्त होंवे ॥१९—२०॥

श्रुत्वा तेषां वचः सौम्यमानन्दाश्रुपरिप्लुतः ।
दृष्टिं पदोः समाधाय गङ्गां समुदचालयत् ॥२१॥

विष्णु भगवान् जी ने उन वालखिल्य ऋषियों के विनय भरे कोमल वचन को सुनकर आनन्द के अश्रुयों से युक्त दृष्टि को अपने चरण कमलों में लगा कर वहां से गंगा को प्रकट किया ॥ २१ ॥

पावयंश्चाश्रमं तेषा मुनीनां भावितात्मनाम् ।
स्वयं तस्थौ च तत्रैव ग्रामे खिल्यायने शुभे २२

उस भगवती गङ्गा से उन पवित्रात्मा ऋषियों के आश्रमों को पवित्र करते हुए भगवान विष्णुजी स्वयं शुभ वालखिल्य [नामक ग्रा में ठहरे ॥ २२ ॥

आभूतसंप्लवं यावत्तापत्परमपावनम् ।
वालखिल्याभिधं तीर्थं भविष्यति न संशयः २३

तथा यह वरप्रदान भी किया कि प्रलय पर्यन्त यह वालखिल्य नामक तीर्थ अवश्य लोगों को पवित्र करता रहेगा ॥ २३ ॥

इत्युक्का तांस्तदा विष्णुर्गतोन्तर्ध्यानमच्युतः ।
वालखिल्या यत्र चेरुस्तपः परमदुश्चरम् २४

वे भगवान् विष्णु जी ऐसा वचन कहकर वहां ही अन्तर्ध्यान हो गये जिस जगह वे वालखिल्य नामक ऋषि कठिन तप कर रहे थे ॥२४॥

ततस्तु प्रथितो ग्रामो वालखिल्यायनः परः ।
नारायणपदोद्भूतं यत् क्षेत्रं तत्र सुन्दरि ! ॥२५॥

हे सुन्दरि क्योंकि श्री भगवान विष्णु जी के चरण कमलों से प्रादुर्भूत हुई भगवती गङ्गा इस क्षेत्र में विद्यमान है इस कारण यह परम पवित्र क्षेत्र वालखिल्य नाम से प्रसिद्ध है ॥ २५ ॥

तदेव ख्याप्यते पुण्यं तीर्थं नारायणाभिधम् ।
महापातकयुक्तो वा युतो वा ह्युपपातकैः ॥२६॥
सद्यः प्रमुच्यते स्नातस्तीर्थे नारायणाभिधे ।

इसी क्षेत्र का दूसरा नाम पवित्र नारायण तीर्थ भी है। महापातक वा उपपातकों से युक्त हुआ पुरुष इस तीर्थ में स्नान करने पर उसी काल पापों से रहित हो जाता है ॥ २६ ॥

नारायणाभिधे क्षेत्रे स्नातव्यमविशङ्कितम् ॥२७॥
घोरकलियुगाद्देवि भीरुणा पुरुषेण वै ।

इस लिये इस पवित्र नारायण नामक तीर्थ में घोर कलियुग के भय से भीत हुए सब यात्रियों ने निःशङ्क होकर स्नान करना चाहिये॥२७॥

नारी वा पुरुषो वापि क्षेत्रे खिल्यायने परे ॥२८॥
स्नात्वा पीत्वा च विधिवन्मुच्यते सर्वपातकैः ।
पुण्ये खिल्यायने ग्रामे विष्णोः क्षेत्रे ह्यनुत्तमे॥२९

नारी अथवा पुरुष इस खिल्यायन नाम क्षेत्र में विधिपूर्वक स्नान और जल पान करके सम्पूर्ण पापों से रहित होजाते हैं ॥ २८ ॥

पवित्र खिल्यायन नाम ग्राम में जो उत्तम विष्णु क्षेत्र है उसमें स्नान करने से पुरुष जन्म जन्मान्तर के किये पापों से छूट सकता है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ २९ ॥

स्नात्वा जन्मभवैः पापै मुच्यते वै न संशयः ।
प्रायश्चित्तविहीनोऽपि पतितस्तत्र चेत्प्रिये ॥३०॥

हे प्रिये प्रायश्चित्त हीन पतित पुरुष भी यदि ऐसे क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त होवे तो निष्पाप होकर स्वर्ग लोकको प्राप्त होजाता है ॥ ३० ॥

म्रियतेधूतपापः सन् स्वर्गलोके महीयते ।
खिल्यायने महापुण्ये विष्णोस्तीर्थेह्यनुत्तमे ॥३१॥

खिलपायन नामक पवित्र और सबसे उत्तम तीर्थ पर पुरुष स्नान दान तथा जप पूजाकरने से स्वर्ग को प्राप्त होजाता है ॥ ३१ ॥

नरो मुक्तिमवाप्नोति स्नानदानजपार्चनैः ।
इतिखेलनके ग्रामे क्षेत्रं खिल्यायनाभिधम् ॥३२॥
श्रुत्वा पठित्वा प्राप्नोति तीर्थस्नातफलं शिवे।
इति भृगुसहितायां खिल्यायन महात्म्य वर्णनं
नाम द्वितीयः पटलः समाप्तः ॥

---

हे भैरवी ! इस खेलक नाम ग्राम में खिल्यायन नामक विष्णुक्षेत्र माहात्म्य को श्रवण तथा पठन करनेसे तीर्थ स्नान के फलको पुरुष प्राप्त होताहै ॥ ३२ ॥

भृगुसंहिता में कथनं की अमरकथा के खिल्यायन नामक तीर्थ के माहात्म्य वर्णन में दूसरा पटल समाप्त हुआ ॥



# अथ तृतीयः पटलः ।

## भैरव उवाच ।

इत्युक्तं यत्त्वया पृष्टं महात्म्यं क्षेत्रसम्भवम् ।
वालखिल्याभिधे ग्रामे किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१॥

भैरवजी बोले

कि हे देवि बालाखिल्य नामक क्षेत्र में स्नानादि करने का जो माहात्म्य था वह मैंने आपके प्रति कह दिया है। अब आप क्या सुनना चाहती हो ॥ १ ॥

## भैरव्युवाच ।

श्रुत्वा खेलनमाहात्म्यं भवन्मुखविनिःसृतम् ।
हरेः पुण्यस्य क्षेत्रस्य निवृत्तास्मि भवाम्बुधेः ॥२
अधुनाश्रोतुमिच्छामि पुण्ये मामलके शुभे ।
क्षेत्रं मामलकं नाम महापातकनाशनम् ॥३॥

भैरवीजी बोले

कि हे देव आप के मुखारविन्द से श्रीहरि के खेलन नामक पवित्र तीर्थ का माहात्म्य सुनकर मैं संसर सागर से निवृत्त ( विरक्त ) होगई हूं अब मैं पवित्र मामलक स्थानमें मामलक नामक तीर्थ जो महापापों के दूर करने हारा है उसकी महिमाको सुनना चाहती हूं ॥ ३ ॥

कथं मामलके क्षेत्रे महागणपतेः फलम् ।
यदि ह्यहमनुग्राह्या प्रिया तेस्मि तदा वद ॥४॥

हे देव मामल नामक क्षेत्र में श्रीगणपति जी की पूजा का विशेष ( जियादा ) फल है इसमें क्या कारण ? यदि मैं आपकी प्रिया हूं तो आप अवश्य मेरे प्रति कथनकरें ॥ ४ ॥

श्रीभैरव उवाच ।

श्रृणुदेवि प्रवक्ष्यामि स्थानं मामलकं शुभम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण नश्यन्ति विघ्नराशयः ॥५॥

श्रीभैरवजी बोले

हे देवि आप मामलक नाम पवित्रतीर्थ की उत्पत्ति को श्रवण [करो जिसके दर्शन से विघ्नों के समूह नष्ट होजाते हैं ॥ ५ ॥

स्थलवाटाद्यदा देवि प्राचलत्स महेश्वरः ।
संस्थाप्य गणपंदेवं द्वास्थं कक्ष्याद्वये शिवे ॥६॥
गतः खिल्यायनादूर्ध्वं दण्डकस्य मुनेः शिवम् ।
तत्रक्षणश्चविश्रम्य देवास्तत्रागमन्मुदा ॥७॥

हे कल्याण करने हारी भगवती महादेवजी गणपतिजी को दोनों डेउढियों में द्वारपाल बनाकर आप स्थलवाट से चलपड़े । वहां क्षण मात्र बैठकर महादेवजी खिल्यायन तीर्थ से ऊपर की ओर दण्डक मुनिके शुभ फल देने वाले क्षेत्रमें क्षणभर विश्राम करने लगे तो महादेवजी के पास देवता उसी स्थान में आय प्राप्त हुए ॥ ६ ॥=७

दृष्ट्वा देवान्समायातान् मामेति प्रावदन्मुहुः ।
मा मागच्छत देवांस्तु प्राक्रोशच्च मुहुर्मुहुः ॥८॥
श्रुत्वा क्रोशंतमीशानं देवो गणपतिस्त्वरन् ।
स्वयंभूः संभ्रमयुक्तः पातालादुत्थितस्तदा ॥९॥
मामेति प्रावदद्देवान् प्रगृह्य परशुं स्वयम् ।
तेन नादेन देवास्ते प्रलीना अभवन्परे ॥१०॥

देवता ओं को आते हुए देखकर महादेवजी ऊंचे स्वर से देवताओं को बार बार बोले कि देवता लोगो मत आगे बढ़ो २ इस प्रकार के शब्द को श्रवण कर अनादि कालसे वर्तमान भगवान् गणपति जी पाताल देशसे ऊपर की ओर शीघ्रता से आये और कुलहाडी लेकर स्वयं फिर भी वही अवाज करने लगे उस शब्द से वे देवता लोक सब से उत्तम ब्रह्मरूपी शिव भगवान में लीन होगये (अर्थात्) तत्सरूपता को प्राप्त हुए ॥ १० ॥

यतः प्रलीनो देवौघः ईश्वरे सच्चिदात्मनि ।
ततः स प्रथितो ग्रामो मामलाख्यो जगत्त्रये॥११॥

जिससे देवताओं का समूह—सत् चित्—स्वरूप भगवान् में लीन होगया अर्थात् जिस कारण यह तपश्चर्या करने से देवता लोग मोक्ष को प्राप्त हुए अतः यह ग्राम तीनो लोगों में मामल नाम से प्रसिद्ध हुआ है ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा गणपतिस्त्रस्तान्पातालादुत्थितः सुरान् ।
तदा प्रोवाच तं देवं गणेशं तु शिवः स्वयम्॥१२॥

पाताल से उठे गणपति से डरे हुए देवताओं को देखकर भगवान् शिवजी स्वयं श्रीगणपतिजी से बोले ॥ १२ ॥

यस्मान्मामेति शब्दं त्वं श्रुत्वा चोदचलः स्वयम्।
तस्मादत्र चिरं तिष्ठ विघ्नसंघान्प्रनाशयन् ॥१३॥

जिस से तुम मामल शब्द को सुन कर पातल से यहां प्राप्त हुए हो इस कारण तुम यहां ही देर तक ठहरो और विघ्नों को दूर करो ॥१३॥

यः कश्चिन्मानवो लोके अत्र त्वां पूजयिष्यति ।
सर्वान् विघ्नान् विनिर्जित्य सिद्धिं समधिगच्छति

जो पुरुष यहां तुम्हारी पूजन करेगा वह विघ्नों से रहित होकर सिद्धिको प्राप्त होगा ॥ १४ ॥

सर्वान्कामानवाप्नोति पशुपुत्रधनानि च ।
यात्रासाफल्यमाप्नोति गणेशस्य प्रसादतः ॥१५॥

श्रीगणेशजी की कृपा से पुरुष सम्पूर्ण कामना पशु पुत्र और धन को प्राप्त होता है और उसकी यात्रा भी सफल होती है ॥ १५ ॥

वर्षे वर्षे तु यः कश्चिन् माधवे मासि नित्यशः ।
पक्षे शुक्ले ह्युपोष्यैकां रजनीं मूर्तिमर्चयेत् ॥१६॥

वर्ष वर्ष में जो पुरुष वैशाख के महीने शुक्लपक्ष में एक रात्रि उपवास कर श्रीगणेश जी की मूर्त्ति का पूजन करे ॥ १६ ॥

इह सम्भुज्य वै भोगान् मृतः स्वर्गे महीयते ।
चतुर्दश्यां शुक्लपक्षे फलं पूर्णं लभेन्नरः ॥ १७ ॥

इस संसार में विविध भोगों को भोग कर मृत्यु के अनन्तर स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ शुक्लपक्षकी चतुर्दशी को गणपति जी की पूजन से पुरुष पूर्ण फल को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

विनायकचतुर्थ्यां वा पूजयेद्यो गणेश्वरम् ।
मामेश्वरसमीपे तु सोऽनन्तफलमश्नुते ॥ १८ ॥

अथवा जो पुरुष गणेशचतुर्थी को मामेश्वरजी के पास गणेशजी की पूजन करता है वह अनन्त फल को प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

त्वाञ्च सम्पूज्य यो देवं मामेशं पूजयेन्नरः ।
स पुण्यफलमाप्नोति न पुनस्तन्यपो भवेत् ॥१९॥

हे गणपतिजी प्रकाश स्वरूप आपका पूजन कर जो मामेश नामक मेरा पूजन करता है वह उस उत्तम पुण्यफल को प्राप्त होता है जिससे वह माता के स्तन दूध पीने योग्यनहीं रहता ॥ १९ ॥

इति दत्वा वरं देवो गणेशाय स्वयंशिवः ।
पुण्येवै दण्डकारण्ये लीनो मामेश्वरः प्रभुः ।

सब के उत्पत्तिस्थान मामेश्वर नामक सदाशिव जी महाराज ऐसे गणपति जी को वर प्रदान कर के स्वयं दण्डकारण्य में अन्तर्ध्यान होगये ॥ २० ॥

दृष्ट्वा मामेश्वरं लिङ्गं पुण्ये मामलके नरः ।
पूजयित्वा गणपतिमश्वमेधफलं लभेत ॥ २१ ॥

पुरुष पवित्र मामलक नामक वन में मामेश्वर का दर्शन कर तथा गणपति जी की पूजा कर अश्वमेध के फल को प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

स्नात्वा मामेश्वरे कुण्डे दृष्ट्वा मामलकं प्रभुम् ।
नरो न लिप्यते पापैः पद्मपत्र मिवाम्भसा ॥ २२ ॥

मामेश्वर कुंड में स्नान कर तथा मामेश्वर प्रभु का दर्शन कर पुरुष पापों से लेपायमान नहीं होता अर्थात् पाप उस के साथ यत्किञ्चित् भी लेश नहीं रखते जैसे पद्मपत्र में पड़ा जल उस के साथ सम्बध नहीं रखता ॥ २२ ॥

इत्थं मामलके ग्रामे माहात्म्यं गणपस्य ते ।
कृपया कथितं देवि महापातकनाशनम् ॥ २३ ॥

हे देवि इस प्रकार मामलक ग्राम में गणपति जी की पूजा का माहात्म्य पापों के नाश करने वाला आप के प्रति मैंने कह दिया है ॥ २३ ॥

इत्येष पटपलो गुह्यो मया तेद्य प्रकाशितः ।
श्रुतश्च पठितश्चापि विघ्नसंघान् व्यपोहाति ॥ २४ ॥

हे देवि ! यह गुह्य पटल मैंने आपके प्रति आज प्रकाशित किया है यह पटल सुना तथा पढ़ा हुवा सम्पूर्ण विघ्नों दूर करता है ॥ २४ ॥

इति श्रीमामेश्वरमाहिमवर्णनं नाम
तृतीयः पटलः ।

इति मामेश्वर नामक महेश्वर की महिमा वर्णन में अमरचन्द्रिका नाम टीका का तीसरा पटल सम्पूर्ण हुआ ॥

भैरव्युवाच

श्रावयित्वा गणेशस्य महिमानमनुत्तमम् ।
तथा मामेश्वरस्यापि क्रीताऽस्मि जगदीश्वर ! ॥१॥

श्री भैरवी जी बोले । हे प्रभो ! आपने सब से उत्तम गणपतिजी की महिमा और मामेश्वर नाम शिव जी भगवान् की महिमा सुनाकर मेरा जीवन मोल ले (खरीद) लिया है ॥ १ ॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि नदीं लम्बोदरीं तथा ।
अनुग्राह्या प्रिया ते चेत्तदा मे कृपया वद ॥२॥

हे प्रभो ! यदि आप मेरे पर कृपा और प्यार रखते हो तो आप मुझे लम्बोदरी नामक नदी का माहात्म्य सुनाएं आप की बड़ी कृपा होगी ॥ २ ॥

भैरव उवाच

एकदा संस्थितस्यापि कैलाशे परमेशितुः ।
देव्या सह द्वारपालो गणेशोऽभूत्तदाज्ञया ॥ ३ ॥

श्री भैरव जी बोले ! एक समय गणपति जी को द्वारपाल बना कर श्री महादेव जी पार्वती के साथ कैलाश में ठहरते थे ॥ ३ ॥

गणेशं कथयामास स्वयं स भगवान् हरः ।
कश्चिन्नात्र समागच्छेत् देवानपि निषेधय ॥४॥

वह भगवान स्वयं गणेश जी को बोले कि यहां किसी को नहीं आने देना। यदि देवता भी आवें तो उन का निषेध करो ॥ ४ ॥

श्रुत्वा वाक्यं महेशस्य महागणपतिस्तदा ।
न्यषेधन्नन्दिना सार्द्धं शासनं पालयन्प्रभोः ॥५॥

तो गणपति जी महेश्वर जी के वाक्य सुन कर नन्दी के साथ वैसे ही स्वामी जी की आज्ञा को पालन करते हुए ठहरे ॥ ५॥

देव्यासह महादेवः क्रीडा (ज्ञान) लापपरोऽभवत् ॥
तयोरेवं प्रवदतोः कैलाशे शुभमन्दिरे ॥६॥
एतस्मिन्नन्तरे देवि शक्रो देवगणैः सह ॥
महेश्वरं द्रष्टुकामः त्रिपुरार्दित आययौ ॥७॥

एक समय कैलास पर्वत पर श्री पार्वती जी के साथ, महादेवजी विज्ञानसम्बन्धि बातें कर रहे थे। उन के इस प्रकार बातें करने पर ॥६॥ उसी समय देवताओं के साथ इन्द्र त्रिपुरासुर से पिड़ित हो कर, महेश्वर जी के दर्शनार्थ आया ॥७॥

तदा गणपतिस्तत्र न्यषेधत् ससुरं हरिम् ॥
शक्रः क्रोधसमाविष्टो वज्रपातं समादधे ॥८॥

तब गणपति जी ने, देवताओं के साथ इन्द्र को आगे आने से रोका, और इन्द्र ने क्रोध होकर वज्र मारना शुरु किया ॥८॥

हुङ्कारेण गणेशोऽपि बाहुमस्तम्भयद्धरेः ॥
स्वबाहुं स्तम्भितं दृष्ट्वा शक्रो गणपतिं तदा ॥९॥
तुष्टाव वाग्भारर्थ्याभिर्दण्डवत्प्रणिपत्य सः ॥
एकदन्तं महावीर्यं देवासुरविपूजितम् ॥१०॥

गणपति जी ने हुंकार मात्र से ही इन्द्र की भुजा को रोक दिया। तब इन्द्र अपनी भुजा को रुके देख, गणपति जी को भूमि पर दण्ड-वत्प्रणाम करके, अच्छी २ वाणियों से स्तुति करने लगा ॥ इन्द्र बोला कि, हे एकदन्त को धारण करने हारे, बड़े बलवाले, और देव दैत्यों से पूजित, हे प्रभो! आप को नमस्कार है ॥१९॥१०॥

इन्द उवाच

तपश्चरद्भिर्मुनिभिःसुपूजितंविनायकंविघ्नविनाश-कारकम् ॥
सृष्टिं विधातुं विधिनापि पूजितं नमाम्यहं तंगजरा-जवक्त्रम् ॥११॥

तप करते हुए मुनियों ने विघ्न विनाश के वास्ते आपकी पूजा की है। तथा सृष्टि की उत्पत्ति करने से पहिले ब्रह्मा जी ने भी आप की पूजा की थी। ( एसे सर्व मान्य ) हाथी के मुख वाले आप को मैं वारम्वार नमस्कार करता हूं ॥११॥

अप्रमेयगुणं नित्यं गणेशं सुरपूजितम् ॥
पार्वतीप्रियपुत्रञ्च प्रणमामि गणेश्वरम् ॥१२॥

अनगिणत-गुणों से भरे हुए गणों के स्वामी देवताओं से भी पूजने योग्य पार्वती जी के प्यारे पुत्र श्रीगणेशजी को मैं नमस्कार करता हूं ॥१२॥

देवानामादिकर्त्तारमादिमध्यान्तवर्जितम् ॥
स्वप्रकाशं प्रपद्ये त्वां परात्मानं विनायकम् ॥१३

पाहिले देवताओं का निर्माण करने वाले आदि मध्य और अन्त से रहित, स्वतःप्रकाशरूप परमात्मा विनायकजी की शरण में प्राप्त होता हूं ॥१३॥

शान्तं चिदद्वयं देवं विमर्शं भवरूपिणम् ॥
तत्त्वसारं महत्तत्वं प्रणमामि गणेश्वरम् ॥१४॥

शान्त और प्रकाशमान वस्तु विचार से महादेव रूप सब तत्त्वों के सार आदितत्व श्री गणेश जी को मैं नमस्कार करता हूं ॥१४॥

ब्रह्म द्वयानवच्छेद्यं शिवाद्वयविबोधितम् ॥
स्वप्रकाशं परात्मानं प्रपद्ये तं विनायकम् ॥१५॥

अतएव (इस लिये) अपने बराबर द्वितीय से रहित वे कल्याण (मङ्गल के स्वरूप) एकत्वेन प्रतीयमान, अर्थात् सर्व व्यापक, स्वयं प्रकाश रूप वाले, (यानी जिस को दूसरे कारण की जरूरत नहीं) ऐसे परमात्मा स्वरूप श्रीगणेशजी के शरण में आज मैं प्राप्त होता हूं ॥१५॥

वैरिविघ्नप्रदन्नित्यं भक्तानां सिद्धिदायकम् ॥
शिवसूनुं परानन्दं प्रणमामि विनायकम् ॥१६

शत्रुओं को विघ्न देने हारे, और भक्तों के कार्य साधन करने वाले, आनन्द स्वरूप श्रीमहादेवजी के पुत्र श्रीविनायकजी को प्रणाम करता हूं ॥१६॥

मोदकाहारसन्तुष्टं साक्षमालाकरं परम् ॥
त्रिनेत्रं गजवक्त्रञ्च तं प्रपद्ये महेश्वरम् ॥१७॥

मोदकों ( लड्डुओं ) के खाने से प्रसन्न होने वाले, हाथ में रुद्राक्ष मालाधारी तीन नेत्रों वाले, हस्ति के मुख वाले, ऐसे श्रीगणेशजी की शरण में प्राप्त होता हूं ॥१७॥

सुदन्तं परशुञ्चैव धारयन्तं भुजद्वये ॥
रक्तवस्त्रपरीधानं रक्तमालाधरं तथा ॥१८॥
विघ्नराशिं विकीर्णान्तं करोत्क्षेपैर्मुहुर्मुहुः ॥
अनन्तं परमं तत्वं सारात्सारतरं परम् ॥१९॥
वेदागमदुरुच्छेद्यं प्रपद्ये गणनायकम् ॥
अप्रमेयगुणायापि त्र्यक्षाय वरवर्णिने ॥२०॥
विनायकाय देवाय भूयो भूयो नमो नमः (अर्ध)

सुन्दर दांत वाले तथा दो भुजाओं में परशु को धारण करने हारे रक्त वस्त्र, और रक्त मालाओं को धारण करने हारे, अपने शुण्ड रूप हाथ से वारंवार विघ्नों को दूर करने वाले, अन्त रहित, सभी से श्रेष्ठ, परमात्म स्वरूप और वेद शास्त्र से भी कठिन प्रतीत होने योग्य, श्री गणनायक जी की शरण को प्राप्त होता हूं ॥ अपरिमित (अनन्त) गुणों से युक्त, नित्य (कालत्रय में अविनाशी) वर प्रदान करने हारे, प्रकाश स्वरूप गणपति जी को मैं वारवार नमस्कार करता हूं ॥१८॥१९॥२०॥

श्री भैरव उवाच

इत्थं गणपतिः श्रुत्वा वाचं सुरपते स्तदा ॥
क्रोधं परं सञ्जहार दृशाऽपश्यत्सुरेश्वरम् ॥२१॥

श्रीभैरवजी बोले—इस प्रकार गणपति जी इन्द्र से की हुई स्तुति को सुन कर, क्रोध को दूर कर, सौम्य दृष्टि से इन्द्र को देखने लगे

मोचयामास तद्बाहुं गणेशः परया मुदा ॥
इन्द्रोऽपि स्वञ्जगामाशु धाम कामसमन्वितः॥२२

तब गणपति जी ने प्रसन्न हो कर, इन्द्र के हाथ को खोल दिया। तब सुरपति इन्द्र भी अपने मनोरथ को प्राप्त हो, अपने स्थान में चला दिया ॥२२॥

प्रणिपत्य महेशस्य सूनुमत्र विनायकम् ॥
क्रोधसंहारकन्नाम स्तोत्रं गणपतेर्मुदा ॥२३॥
त्रिकालं श्रद्धया युक्तः पठन् मुच्येत सङ्कटात् (अर्ध)

महादेवजी के पुत्र गणपति को प्रणाम कर, क्रोध के दूर करने हारे, इस गणपति जी के स्तोत्र को जो पुरुष तीन काल में श्रद्धा भक्ति से, तथा प्रसन्नता पूर्वक पढ़ता है, वह सङ्कटों ( अनेक प्रकार के कष्टों ) से रहित हो जाता है ॥२३॥

इन्द्र कोपाद् गणेशोवै तृषितः क्षुधितोऽपि च ॥
भुक्त्वा स्वादुफलान्यत्र ययौ गङ्गां सपुष्कलाम्॥२४

इन्द्र पर क्रोध करने से गणपति जी भूखे प्यासे हुए स्वादु फल खा कर गङ्गाजी को पीने वास्ते गये ॥२४॥

पीत्वा गङ्गां स विघ्नेशस्तदा लम्बोदरोऽभवत् ॥
लम्बोदरेति नाम्ना वै आजुहाव हरस्तदा ॥२५॥

गङ्गा का बहुत सा जल पान करने से गणेश जी का पेट बढ़ गया। तब महादेव जी गणपति जी को लम्बोदर नाम से पुकारने लगे ॥२५॥

शुष्कां दृष्ट्वा तु गङ्गां तां हरो गणपतेः प्रिये! ॥
क्रोधेनाप्युदरन्तस्याऽहनड्डमरुणा शिवे! ॥२६

भैरव जी कहते हैं हे प्रिय! महादेव जी ने गणपतिजी के पीने के कारण सूखी हुई गङ्गा को देख कर गणपति के पेट में क्रोध से, डमरु की चोट की ॥२६॥

अवमन्मुखतो गङ्गा तदा गणपतेः प्रिये ॥
यस्माल्लम्बोदरात्तस्य जाह्नवी सा विनिःसृता ॥२७

गणपति जी के उदर को ताड़ना करने से उन के उदर से गङ्गा भगवती निकल फिर प्रवाहरूप से वहने लगी। इसी लिये पौराणिकों ने महालम्बोदरी नाम प्रसिद्ध किया ॥२७॥

तस्मात्प्रोक्ता पुराविद्भिर्महालम्बोदरी नदी ॥
लम्बोदर्य्यां नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्विषैः॥२८

इस लम्बोदरी नदी में स्नान करने से पुरुष सर्व पापों से रहित हो जाता है ॥२८॥

लम्बोदरीजलस्पर्शः कोटिजन्माघनाशनः ॥
करणीयो महादेवि ? मामलेशस्य सन्निधौ ॥२९॥

हे देवि ! लम्बोदरी नदी के जल का स्पर्श कोटि जन्मों के पापों का विनाश करने वाला है । इस लिये मामलेश्वर के पास इस नदी का स्पर्श करना जरूरी और अत्यावश्यक है ॥२६॥

लम्बोदरभवा चैव नदी परमपावनी ॥
स्नाति यो विधिवत्तस्यां सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३०

लम्बोदरी नामक गणपति जी के उदर से पैदा हुई २ परम पवित्र करने वाली इस नदी में जो स्नान करता है वह पुरुष सर्व पापों से रहित हो जाता है ॥३०॥

गोभूहिरण्यवासांसि लम्बोदरनदीतटे ॥
यो ददाति सुविप्राय सोऽनन्तफलमश्नुते ॥३१॥

जो पुरुष इस नदी पर गौ, सुवर्ण, और वस्त्रदान कर उत्तम ब्राह्मण को देता है, वह अनन्त फलको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥

लम्बोदरनदीतीरे यः स्नाति परया मुदा ॥
स याति विघ्न रहितः शिवलोकं सनातनम् ॥३२॥

जो पुरुष इस नदी पर आनान्दित चित्त से स्नान करता है, वह विघ्न रहित होकर, सदा रहने वाले शिवलोक को प्राप्त होता है ॥३२॥

इति ते कथिता देवि, नदी लम्बोदरी शुभा ॥
श्रुता सुभक्तितः पुम्भिर्महापातकनाशिनी ॥३३॥

हे देवि यह परम पवित्र लम्बोदरी नामक नदी की कथा सुना दी है । यह कथा भक्ति वा प्रेम से जो सुनता है उस के सम्पूर्ण पातकों को नाश करने वाली है ॥ ३३ ॥

इत्येष पटलो गुह्यः कलिकल्मषनाशनः ॥
श्रुतोऽनुध्यात-पठितो महापातकनाशनः ॥३४॥

यह गुप्त चौथा पटल कलियुग में पैदे हुए पापों के हरने वाला है। इस के सुनने तथा चिन्तन से चित्त में आए हुए सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ २४ ॥

इति लम्बोदरीनदीमाहात्म्यवर्णनं
नाम चतुर्थः पटलः समाप्तः ॥

इति लम्बोदरी नदी के माहात्म्य वर्णन में अमरचन्द्रिका नाम भाषा टीका का चतुर्थ पटल सम्पूर्ण हुआ है ॥

(श्री भैरव्युवाच)

लम्बोदर्य्याः प्रभावश्च श्रुतस्त्वन्मुखपङ्कजात् ॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि भृगुतीर्थमनुत्तमम् ॥१॥

भैरवी जी बोले—हे प्रभो आप के मुखकमल से लम्बोदरी नदी का माहात्म्य सुन लिया, अब मैं भृगुतीर्थ का माहात्म्य सुनना चाहती हूं ॥१॥

श्री भैरव उवाच ।

शृणुदेवि ! प्रवक्ष्यामि महिमानमनुत्तमम् ॥
भृगुतीर्थस्य यच्छ्रुत्वा ऽमरेशं द्रष्टुमर्हति ॥२॥

तब भैरव जी बोले—हे प्रिये, अब तुम भृगुतीर्थ का माहात्म्य सुनो। जिस के सुनने से शुद्ध अन्तःकरण हुए पुरुष अथवा स्त्री श्री अमरनाथ जी के दर्शन के योग्य हो जाते हैं ॥२ ॥

नरो वाऽप्यथवा नारी शुद्धान्तःकरणो यथा ॥
भृगुर्मुनिवरो देवि ! परिशीलवने शुभे ॥३॥
तपश्चचार सुमहद् देवैरपि सुदुष्करम् ॥
दिव्यं वर्षसहस्रन्तु परिशीलतपोवने ॥४॥
जगाम परमर्षेश्च नियतस्य परात्मनि ॥
आजगाम तदा बिष्णुर्दर्शनाय भृगोर्मुनेः ॥५॥
सर्वैर्देवगणैः सार्द्धं भृगुः प्रोवाच तं हरिम् (अर्थ)

हे देवि ! मुनिवर भृगुजी परिशीलन शुभ वन में ऐसा बड़ा भारी कठिनतप करते हुए जो कि देवताओं से भी होने योग्य न था । इस प्रकार वे महात्मा देवताओं के हजार वर्ष तक परिशीलन बन में तप कर रहे थे। तो अवसर पाकर देवगणों को साथ लिये हुए विष्णु भगवान् उस वन में भृगुजी के दर्शनार्थ आये। और भृगुजी विष्णु भगवान् से स्तुतिबचन बोले ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

भृगुरुवाच ।

नमोऽस्तु ते देवमुनीन्द्रबन्द्य-
पादारविन्दाच्युत कृष्ण जिष्णो ! ॥
मनोभिलाषः सफली कृतस्त्वया,
ममातिहारिन् कृपया दयानिधे ! ॥६॥

भृगुजी बोले– हे देवता और मुनियों से बन्दन करने योग्य चरणारविन्द वाले सर्वदा एकरस दैत्यों के नाश करने हारे, जयशील, हे देवाधिदेव आप को मेरा नमस्कार है । हे मेरे दुःखों को हरने वाले, दयासागर, आप ने मेरी सब इच्छायें पूर्ण करदीं है ॥ ६ ॥

विष्णो जिष्णो महाविष्णो प्रभविष्णो जगत्पते ! ॥
अप्रमेयानन्तगुण ! भूयो भूयो नमोऽस्तु ते ॥७॥

हे सर्वव्यापक, जयशील, सब से बड़े परिमाण वाले, सब सामर्थ्य वान्, जगत्स्वामिन्, गिनती तथा मान से रहित गुणों वाले, प्रभो, आपको वारम्वार मेरा नमस्कार है ॥ ७ ॥

इति स्तुत्वा महाविष्णुं प्रभविष्णुं सुरेश्वरम् ॥
दण्डवत्प्रणिपत्याशु भूयो भूयो ननाम सः ॥८॥

इस प्रकार सब सामर्थ्ययुक्त, सर्वव्यापक, देवाधिदेव की स्तुति करके, वारंवार दण्डवत् प्रणाम करने लगे ॥ ८ ॥

उत्थाप्य प्रणतं तत्र भृगुं विष्णुः सनातनः ॥
आनन्दाश्रुपरिक्लिन्नो चुम्बन्मूर्धनि तं मुनिम् ॥९॥

सदा एक रस रहने वाले श्री लक्ष्मीपति, साष्टाङ्ग प्रणाम कर रहे भृगुजी को उठा कर आनन्द पूर्वक आसुओं से पूर्ण हुए २ उसके सिर को चुम्बन कर गले से लगाते हैं ॥ ९ ॥

आलिलिङ्गतुरन्योन्यं भृगुविष्णू महेश्वरि ! ॥
तदङ्गजातप्रस्वेदजलैः परमपावनैः ॥ १० ॥
पुण्यतीर्थमभूद्देवि ? परिशीलवने शुभे ॥
भृगोरालिङ्गनाद्यस्माद्धरि स्वेदसमुद्भवम् ॥११॥
पुण्यं सुप्रथितं लोके भृगुतीर्थं महेश्वरि ! ॥
तत्र स्नात्वा ताम्रदानं वस्त्र दानञ्च मानवः ॥१२॥

करोति सफला यात्रा तस्य सत्यन्न संशयः ॥
भृगुतीर्थे नरः स्नात्वा पुण्यं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥१३॥
भृगुतीर्थे महाविष्णोः स्वेदोद्भूते महेश्वरि ! ॥
स्नात्वा पीत्वा प्रमुच्येत ब्रह्महत्यादि कोटिभिः १४

हे महेश्वरि ! ऐसे भृगु और विष्णु भगवान् ने आपस में अलिंगन किया। उन के शरीर से जो परम पवित्र पसीना निकाला, उससे परिशीलन वन में पवित्र तीर्थ बना। क्योंकि यह तीर्थ भृगुके आलिङ्गन करने से विष्णु जी के शरीर से पैदे हुए, प्रस्वेद से प्रकाश हुआ है। इसी कारण इस का नाम पुरय भृगुतीर्थ पड़ा है ॥ इस तीर्थ पर जो पुरुष स्नान करके, ताम्रदान तथा वस्त्रदान करता है, इस में सन्देह नहीं उस की यात्रा पूर्णतया सफल होती है। हे महेश्वरि ! महाविष्णु के प्रस्वेद से पैदे हुये भृगुतीर्थ में पुरुष स्नान कर अति उत्तम पुरयको प्राप्त हो जाता है ॥ इस तीर्थ पर स्नान करने तथा इसका जलपान करने से पुरुष अनेक प्रकारों के ब्रह्महत्यादि पापों से रहित हो जाता है ॥ १०-१४॥

श्राद्धं कृत्वा तीर्थवरे भृगोः परमपावने ॥
पितरस्तृप्तिमायान्ति शतकल्पं न संशयः ॥१५॥

इस अत्युत्तम भृगु नामक तीर्थ पर श्राद्ध करने से पितर सौ कल्प तक अर्थात् देवताओं के दो हजार युग तक तृप्ति को प्राप्त होते हैं ॥८॥

शुभे वैभार्गवे देवि ! स्नात्वा पीत्वा च सुन्दरि ! ॥
नरो न लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१६॥

हे सुन्दरि ! इस शुभ भृगुतीर्थ पर स्नान करके अथवा इसका जल पान करके पुरुष पापों से इस तरह छूठ जाता है, जिस तरह कमल का पत्ता जल में रहता हुआ भी जल से नहीं लिपा जाता ( अर्थात कमल के पत्ते पर जल जिस तरह नहीं ठहरता उसी तरह पुरुष के ऊपर भी पाप का लेश मात्र भी नहीं रहता ॥ ६ ॥

भूयो भूयः किमुक्तेन नरः पातकवान् कलौ ॥
भृगुतीर्थं समासाद्य मुच्यते सर्वकिल्विषात् ॥१७॥

हे देवि, वारंवार कहने से क्या प्रयोजन है । कलियुग में पापी पुरुष भृगुतीर्थ में प्राप्त होकर सब पापों से रहित हो सकता है ॥ १७ ॥

(श्री भैरव्युवाच )

परिशीलवने पुण्ये महापातकनाशनम् ॥
भृगुक्षेत्रस्य माहात्म्यं श्रुत्वा प्रीताऽस्मि ते प्रभो! १८

श्री भैरवी जी बोलीं– हे प्रभो ! पवित्र परिशीलन वन में पापों के विनाश करने वाले भृगुतीर्थ का माहात्म्य सुनकर, मैं आप से बड़ी प्रसन्न हुई हूं ॥१८॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि रञ्जनारण्यसम्भवम् ।
महिमानं शिलायाश्च रामकुण्डादिवर्णनम् ॥१९

अब मैं रञ्जनारण्य में होने वाली शिला का तथा रामादि कुण्डों का महात्म्य सुनना चाहता हूं ॥१९॥

(श्री भैरव उवाच )

पुरा त्रेतायुगे जातो रामो दशरथात्मजः ॥
गतोऽसौ दण्डकारण्यं सीता-लक्ष्मण-संयुतः ॥२०

श्री भैरव जी बोले—हे देवि ! पूर्व समय त्रेतायुग में दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्रजी एक समय सीता और लक्ष्मण के समेत दण्डकारण्य में गये ॥२०॥

रञ्जनाख्यं तदा प्राप्य वनं दैत्यान्मदोत्कटान् ।
विचरन्तो वनं पुण्यं रामः सीता च लक्ष्मणः । ६
तान् दृष्ट्वा स्वेदसंयुक्ता बभूवू रञ्जने वने । २१ ।
तत्स्वेदजलसम्भूताः कुण्डास्तत्र शरानपि ॥२२

रञ्जनाख्य वन में सीता, लक्ष्मण तथा राम जी प्राप्त होकर पवित्र वन में विचरते २, मदयुक्त राक्षसों को देखकर, उसी वन में प्रस्वेद युक्त हुए । और उस प्रस्वेद के कुण्डों में पड़ने से यह कुण्ड परम पवित्र हुये हैं ॥२१॥२२॥

गृहीत्वाऽश्मनि चारुह्य चकर्त दैत्यपुंगवान् ॥
शेषा भीताः पलायन्ते रामचन्द्रशरार्दिताः ॥२३॥

श्रीरामचन्द्रजी पाषाण पर आरूढ़ होकर, बाणों को ग्रहण कर दैत्यों का विनाश करने लगे बाकी जो दैत्य बचे रहे, वे सब श्रीरामचन्द्र जी के बाणों से पीड़ित होकर इधर उधर भाग गये ॥२३॥

तद्रक्तपाताद्रक्तः सः गण्डशैलो ह्यनुत्तमः ॥
रामपादारविन्दस्य स्पर्शनात्पावनः स्मृतः ॥२४

उन राक्षसों के खून गिरने से वह गण्डशैल रंग गया । श्रीरामचन्द्रजी के चरणारविन्दों के स्पर्श से पवित्र करने हारा होगया है ( जो पहाड़ से बड़े २ भाग ( हिस्से ) गिरकर छोटी २ पहाड़ियां बन जांय तो उनको गण्डशैल कहते हैं ) ॥२४॥

पापैर्मुक्तो भवेद्यत्र रञ्जनोपलदर्शनात् ॥
कुण्डे स्नानञ्च कृत्वाऽत्र पापबन्धात्प्रमुच्यते२५

हे देवि ! इस रञ्जनोपल के दर्शन से पुरुष पापों से मुक्त हो जाता है । तथा इस कुण्ड में स्नान करने से पुरुष पापों के सम्पूर्ण बन्धनों से छूट जाता है ॥२५॥

पुरुषा वाऽथवा नारी स्नानं कृत्वा महेश्वरि ! ॥
कुण्डे वै पावने तत्र विष्णुलोके महायते ॥२६॥

हे महेश्वरि, पुरुष हो, अथवा स्त्री हो, जो इस पवित्र कुण्ड में स्नान करता है, वह सीधा विष्णुलोक को जाता है ॥२६॥

( श्री भैरव्युवाच )

रञ्जनारण्यमाहात्म्यं श्रुतं त्वन्मुखपङ्कजात्
पुनश्च नीलगङ्गायाः महिमानन्तु मे वद ॥२७॥

श्री भैरवी जी बोलीं– हे प्रभो ! आपके मुख कमल से रज्जनारण्य की महिमा मैंनें सुन ली है । अब आप नील गङ्गा की पवित्र कथा को कृपा करके सुनायें ॥२७॥

( श्री भैरव उवाच )

श्रणु देवि, प्रवक्ष्यामि श्रवणौत्सुक्यकारिकाम्
उत्पत्तिं नीलगङ्गाया यां श्रुत्वा मुच्यते भवात्२८

श्री भैरव जी बोले– कि हे देवि, कानों को परम प्यारी होने से अति उत्कण्ठा देने वाली, नीलगङ्गा की उत्पत्ति श्रवण करो, जिसके श्रवण से पुरुष संसार से मुक्त हो जाता है ॥२८॥

एकदा क्रीडतस्तस्य शिवस्य वरवर्णिनि ! ॥
देव्याः सौरतसंलापैरन्यैः क्रीडनकैरपि ॥२९॥
अक्षिणी चुम्बतस्तस्य पार्वत्या वरदायिनि ! ॥
कालाञ्जनाक्तं वदनं समभूत्तस्य सुन्दरि ! ॥३०॥

हे वरवर्णिनि ! (उत्तमस्त्री) एक समय कामक्रीड़ा की बातें तथा खेलाओं में लगे हुए महादेवजी ने पार्वतीजी के नेत्रों को मुख लग गया। हे सुन्दरि ! तब उन का मुख अञ्जन लगने के कारण काले अञ्जन से चिन्हित हुआ ॥२९॥ ३० ॥

कालाञ्जनाङ्कितं दृष्ट्वा मुखं देवस्य पार्वती ॥
दर्शयामास वै तस्मै दर्पणं विमलं तदा ॥३१॥

तब अञ्जन से चिन्हित महादेवजी के मुख को देखकर पार्वती जी ने उन को विमल शीशा दिखाया ॥३१॥

दृष्ट्वाञ्जनाङ्कितं वदनं स्वं देवो भगवान् हरः ॥
तदा प्रक्षालयामास गङ्गायां वदनं शिवः ॥३२॥

तब महादेव जी सुरमे से काले हुए अपने मुख को देख कर हे भैरवि ! मुख के कालेपन को गंगा में धोते हुए ॥३२॥

सैव गङ्गा समुत्पन्ना कालाञ्जननिभाऽभवत् ॥
नीलगङ्गेति विख्याता महापातकनाशिनी॥३३॥

तब उस अञ्जन के कालख से गंगाजल का वर्ण (रंग) काला होगया। इसी कारण इस का नाम नीलगंगा पड़ा है। यह पुण्यतमा नदी महापापों के नाश करने वाली है ॥ ३३ ॥

नीलगङ्गाजलस्पर्शो दोषं संसर्गतोऽसताम् ॥
स्त्रीणामात्मविकारादीन् नाशं स नयति ध्रुवम् ॥३

सो यह नीलगंगा का स्पर्श दुष्ट पुरुषों के संग से प्राप्त हुये दोष को, तथा स्त्रियों के मनके विकारों को निश्चय से नाश करता है इस सन्देह नहीं ॥ ३४ ॥

तथा नीलजलं पुण्यं महापातकनाशनम् ॥
स्नात्वा पीत्वा च विधिवत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३५

इस प्रकार सब पापों का नाश करने वाले नीलगङ्गा के जल में स्नान करने से, तथा विधिपूर्वक जल पान करने से पुरुष सम्पूर्ण पापों से छूट जाता है ॥ ३५ ॥

इति ते कथितं देवि ! माहात्म्यममरोत्तमे ! ॥
भृगोः क्षेत्रस्य नीलाया महापातकनाशनम् ॥३६

हे देवताओं से उत्तम भगवति ! मैंने आप को महापापों के नाश करने हारे भृगुतीर्थ तथा नीलगङ्गा का माहात्म्य सुना दिया है ॥ ३६ ॥

इत्येष पटलो गुह्यः स्त्रीणां पापप्रणाशनः ॥
ऐश्वराद् वचनाद्देवि! त्रिमलघ्नः प्रकीर्तितः ॥३७

इति श्री परिशीलनवने भृगुतीर्थ-नीलगङ्गामाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चमः पटलः॥

हे देवि ! यह गुप्त पटल स्त्रियों के पापों को तथा ( कायिक, वाचिक, मानसिक ) इन तीनों पापों को नाश करने वाला है ॥ ३७ ॥

इति श्रीपरिशीलन वन(पहलगाम से ऊपर स्थित) में भृगुतीर्थ तथा नीलगङ्गा के माहात्म्य वर्णन में अमरचन्द्रिका नाम भाषा टीका का पाचवां पटल समाप्त हुआ ॥

## षष्ठः पटलः ।

श्री भैरव उवाच

इति ते कथितं देवि ! नीलगङ्गाजलोद्भवम् ॥
माहात्म्यं पुनरेवास्ति का चेच्छा श्रोतुमीश्वरि! ॥१

फिर श्रीभैरवजी बोले—हे देवि! मैंने तुमको नीलगंगा का माहात्म्य सुना दिया है। अब तुम क्या सुनना चाहती हो ॥ १ ॥

श्री भैरव्युवाच

श्रुत्वाऽहं महिमानं हि नीलगङ्गासमुद्भवम् ॥
कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि कृपया भवतां प्रभो! ॥२॥

यह सुन कर श्रीभैरवी जी बोलीं—कि, मैं आप की कृपा से नीलगंगा का माहात्म्य सुनकर बहुत ही कृतार्थ हो चुकी हूं अर्थात् मेरा जन्म सफल होगया ॥ २ ॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि स्थाणवाश्रममहावनम् ॥
मुमुक्षूणां हितार्थाय कृपया वद मे प्रभो ! ॥३॥

हे प्रभो ! अब मैं महावन में स्थाणवाश्रम का वर्णन ( माहात्म्य ) सुनना चाहती हूं। आप मुक्ति के चाहने वालों के हित लिये कृपा कर कहें ॥ ३ ॥

श्री भैरव उवाच

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि स्थाणवाश्रममहावनम् ॥
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ॥४॥

श्रीभैरव जी बोले—कि हे देवि ! स्थाणवाश्रम का माहात्म्य सुनो। जिस के सुनने से मनुष्य अनेकानेक पापों से छूट जाता है ॥ ४ ॥

पुरा चचार सुमहत् तपो हैमवने नगे ॥
गिरीशो दक्षतनुजा विश्लेषिततनुः शिवः ॥५॥

पूर्व काल में दक्षप्रजापति की पुत्री सती के वियोग होजाने पर पहाड़ों में रहने वाले महादेवजी हिमालय में कठिन तप करने लगे ॥५॥

दिव्यवर्षसहस्रान्तं समाधिनिरतोऽभवत् ॥
तत्रैव पार्वती देवी शिवसेवार्थमागता ॥६॥

वह महादेव जीं दिव्य हजार वर्ष समाधि में मग्न रहे । वहां ही उन की सेवा के लिए पार्वती जी भी आ प्राप्त हुई ॥ ६ ॥

सेवापरा स्थिता तत्र चिरं देवी महेश्वरी ॥
न चचालात्मध्यानाद्धि तपसि स्थाणुसंस्थितः॥७

महेश्वरी दिव्यस्वरूप भगवती वहां देर पर्यन्त परिचर्या (सवो) करतीं रहीं । परन्तु महादेव जी समाधि से चलायमान नहीं हुए ॥ ७ ॥

वाटिकायां चन्दनानां पार्वती ह्याकुलाऽभवत् ॥
स्थाणुवत् संस्थितो यत्र महेशस्तपसि स्थितः ॥८॥

तब चन्दन बाटिका में पार्वती बहुत घबरा गई जिस बाटिका में निश्चलरूप वृक्ष के झुंड जैसे भगवान् शिव तप में स्थित थे ॥ ८ ॥

स्थाणवाश्रम इति प्रोक्तो महापातकनाशनः ॥
स्थाणवाश्रमसमीपे तु यः स्नायात् सुरवन्दिते !॥९

उस स्थान का नाम महापाप विनाशक स्थाणु-आश्रम प्रसिद्ध हुआ । हे देवताओं से वन्दना करने योग्य भैरवि ! इस स्थाणु-आश्रम के पास जो स्नान करता है वह शिव धाम को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

शैवं धाम स चाप्नोति यत्र गत्वा न शोचते ॥
प्रमथैः क्रीडते नित्यं शिवेन सह मोदते ॥१०॥

वहां शिवके गणों के साथ खेलता है। और शिव भगवान् के साथ हो कर प्रसन्न चित्त रहता है ॥ १० ॥

स्थाणवाश्रमे तु यः श्राद्धं करोति विधिवन्नरः॥
तत्पूर्वे तृप्तिमायान्ति शतकल्पं न संशयः ॥११

जिस स्थान को पाकर पुरुष को शोक नहीं प्राप्त होता । स्थाणु आश्रम में जो पुरुष विधि से श्राद्ध करता है उस के पितर सौ कल्प तक तृप्ति को प्राप्त हुए रहते हैं इस में सन्देह नहीं ॥ ११ ॥

महापातकयुक्तो वा युतो वा ह्युपपातकैः ॥
स्थाणवाश्रमवने पुण्ये मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥१२॥

महापातक ब्रह्महत्यादि तथा उपपातक गोहत्यादि से युक्त भी पुरुष स्थाणु-आश्रम में स्नान करने से सब पापों से रहित हो सकता है ॥ १२ ॥

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे ॥
स्नात्वा यत्फलमाप्नोति तत् स्थाणोर्दर्शनात् प्रिये ॥

हे प्रिये ! कुरुक्षेत्र तथा प्रयाग और गंगासागर के संगम में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है ! वह स्थाणु-आश्रम के दर्शन से ही प्राप्त होजाता है ॥ १३ ॥

स्थाणवाश्रमसमीपे तु स्नानं कृत्वा विधानतः ॥
अश्वमेधशतानान्तु फलमाप्नोति मानवः ॥१४॥

स्थाणु-आश्रम के समीप विधि के अनुसार स्नान करने से सौ अश्वमेध यज्ञों के फल को पुरुष प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

भूमिं हिरण्यं क्षौमं च तिलप्रस्थं महेश्वरि ! ॥
दत्त्वा स्थाणोराश्रमे तु परं पुण्यमवाप्नुयात् ॥१५

हे महेश्वरि ! भूमि सुवर्ण पट्ट वस्त्र और प्रस्थ भर तिल स्थाणु-आश्रम में प्रदान करने से पुरुष बहुत ही पुण्य को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

अत्र देवार्चनं कुर्वन् तिलतर्पणमेव च ॥
जपँश्च मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ॥१६॥

इस आश्रम में देवता पूजन तथा पितृ तर्पण और जप करने से पुरुष बहुत ही बहुत पापों से रहित हो जाता है ॥ १६ ॥

यो नात्र कुरुते दानं स्नानमर्चनमेव च ॥
स याति नरकं घोरं जन्मजन्मनि पातकी ॥१७॥

जो पुरुष इस क्षेत्र में दान स्नान तथा पूजन नहीं करता वह घोर नरक को प्राप्त होता है ! और जन्म जन्म में पातकी रहता है ॥ १७ ॥

तस्मात् स्थाणवाश्रमे भक्त्या संध्यातर्पणमाचरेत्
संध्याकोटिगुणा प्रोक्ता तर्पणं स्यादनन्तकम् ॥१८

इस लिए स्थाणु-आश्रम में भक्तिपूर्वक संध्या तर्पण करना चाहिए । इस स्थान में संध्या कोटिगुण अधिक फल को और तर्पण अनन्त फल को प्राप्त होता है ॥ १८॥

इति तेऽभिहितो देवि! स्थाणवाश्रमविनिर्णयः ॥
अतः परतरं देवि! श्रोतुमिच्छसि किं शिवे! ॥१९॥

हे देवि ! यह आप को (चन्दन बाड़ी में) स्थाणु-आश्रम का निर्णय (माहात्म्य) सुना दिया है। हे कल्याण करने वाली देवि ! इस के आगे अब क्या सुनना चाहती हो ॥ १९ ॥

श्री भैरव्युवाच

अधुना श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं परमुत्तमम् ॥
पेषणाख्यगिरेर्देव! तन्मे कथय सुव्रत ! ॥२०॥

श्रीभैरव जी बोले– हे देव ! अब मैं पेषणाख्य पर्वत का अति उत्तम माहात्म्य सुनना चाहती हूं । हे उत्तमव्रतयुक्त ! आप मेरे प्रति कथन करें ॥ २० ॥

श्री भैरव उवाच

कैलासे शिवमासीनं पार्वत्या प्रियया सह ॥
शूलिनं त्वतिहर्षेण प्रष्टुं जग्मुः सुराऽसुराः ॥२१

श्रीभैरव जी बोले–देव और असुर एक समय श्रीपार्वती के साथ अति आनन्द में बैठे महादेव जी का दर्शन करने को आये ॥ २१ ॥

स्थाणवाश्रमे च मिलिताः सर्वे देवाश्च राक्षसाः॥
दर्शनार्थं तु देवस्य गिरिमारुरुहुर्मुदा ॥२२॥

वह देव दैत्य स्थाणु-आश्रम में इकट्ठे हुए और महादेव जी के दर्शन वास्ते पर्वत पर आनन्द से चढ़ने लगे ॥ २२ ॥

गिर्य्यारोहणकाले ते कथयन्तः परस्परम् ॥
अहंपूर्वमहंपूर्वमित्येवं स्पर्द्धया पुरा ॥२३॥

वह पहाड़ पर चढ़ने के समय, मैं पहिले चढ़ता हूं २ इस प्रकार आपस में ईर्षा करने लगे ॥ २३ ॥

कलहं चक्रिरेऽन्योन्यं भुजाभुजि महेश्वरि ! ॥
त्रस्तैः शम्भोः पदं देवि ! ध्यातमेकाग्रमानसैः ॥२४

हे महेश्वरि ! वह आपस में बाहु-युद्ध से लड़ने लगे तब राक्षसों से भय भीत हुए देवों ने शिवजी के चरणों का एकाग्र चित्त से ध्यान किया ॥ २४ ॥

शम्भोरनुग्रहाद् देवि ! पिष्टा दैत्याः सुरोत्तमैः ॥
मुष्टिप्रहारैः पिष्टास्ते राक्षसा यत्र सुन्दरि ! ॥२५॥

हे देवि ! महादेव जी की कृपा से उत्तम देवताओं ने दैत्यों को चूर्ण कर दिया। हे सुन्दरि ? जिस स्थान में वह राक्षस मुष्टि प्रहारों (मुक्कियों की चोटों) से चूर्णता को प्राप्त हुए ॥ २५ ॥

लीना गिरौ भवन्ति स्म यत्र ते राक्षसाः प्रिये !
दैत्यदेहास्थिसंभूता तत्र राशिः सुविस्तरा ॥२६॥

और हे प्रिये ! जिस पर्वत में वे राक्षस लीन हुए वहां उन राक्षसों की अस्थियों का एक बड़ा भारी (राशि) ढेर का ढेर होगया ॥२६॥

स गिरिः परमोद्धार पेषाख्यः प्रथितो भुवि ॥
पिनष्टि शिवभक्तानां पापरूपांस्तु राक्षसान् ॥२७

वह ही शिव भक्तों के परम उद्धार करने वाला पर्वत "पेषण" इस नाम से प्रसिद्ध हुआ जो अब तक भी शिवभक्तों के पापरूप राक्षसों को नष्ट करता है ॥ २७ ॥

तस्मात् प्रोक्तः पुराविद्भिः पेषाख्यो गिरिरुत्तमः ॥
कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे ॥२८॥

स्नानाद्यत्फलमाप्नोति तदेतस्य तु दर्शनात् ॥
आरोढुमिच्छति तु यो गिरिं देवि! समन्ततः।२९।

इसी लिए इसका नाम पुराण जानने वाले पण्डितों नेपेषपर्वत ऐसे प्रसिद्ध किया है । कुरुक्षेत्र-प्रयाग तथा गङ्गासागर के संगम में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है वह इसके दर्शन मात्र से प्राप्त होजाता है ।।२९।।

श्री श्री श्री श्री शितीकण्ठ इमं मन्त्रमनुस्मरन् ॥
स ब्रह्मसदनं याति यत्र गत्वा न शोचते ॥३०॥

हे देवि ! श्री ४ शितीकण्ठ इस मन्त्र को स्मरण करता हुआ ही जो पुरुष पर्वत पर चढ़ता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है । जिस स्थान में शोक का नाम मात्र भी नहीं ।।३०।।

महान्ति मेरुतुल्यानि पापानि यदि सुंदरि ! ॥
तान्यस्य दर्शनादेव नाशमायान्ति तत्क्षणात् ॥

हे सुन्दरि ! इसके दर्शन मात्र से बड़े भारी चाहे मेरुपर्वत के बराबर भी क्यों न हों सब पाप नाश को प्राप्त हो जाते हैं ॥

विधिना यो नरो देवि ! पेषमारुहते यदि ॥
पापसंघान्स पिष्ट्वाऽत्र सदा शिवपदंव्रजेत ॥३२॥

हे देवि ! जोविधि से पेषनामक पर्वत पर चढ़ता है वह पाप समूह को नाश कर शिवधाम को प्राप्त होता है ॥३२॥

पेषदर्शनमात्रेण भूताः प्रेताः पिशाचकाः ॥
डाकिन्याद्याश्च सर्वास्ता नाशमायान्ति तत्क्षणात

हे देवि ! पेषनामक पर्वत के दर्शनमात्र से भूत-प्रेत-पिशाच डाकनी आदि सब, विघ्न करने वाले शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥

नमस्करोति यो देवि! पुण्यं पेषागिरिं नरः ॥
स मुक्तिफलमाप्नोति सत्यं वच्मि वरानने!॥३४॥

हे देवि ! जो पुरुष श्रद्धा से इसको नमस्कार करता है वह भी कालान्तर में अभ्यास वश हो मुक्ति को प्राप्त होजाता है ॥३४॥

इति प्रोक्तो मया देवि ! पेषस्य महिमा गिरेः ॥
श्रुतोऽनुध्यातपठितः महापातकनाशनः ॥३५॥

हे प्रकाश करने वाली देवि ! यह मैंने आप को पेषपर्वत की महिमा सुना दी है । यह सुनी हुई और चिन्तन की हुई तथा पढ़ी हुई महापापों को नाश करने वाली है ॥३५॥

इत्येष पटलो गुह्यः प्रोक्त स्तव वरानने ! ॥
श्रुतश्च पठितश्चापि ज्योतिष्टोमादियज्ञदः ॥३६॥

हे सुमुखि ! देवि ! यह गुप्त पटल आप को सुना दिया है । यह सुना तथा पढ़ा हुआ ज्योतिष्टोमादि यज्ञ के फल को देता है ॥३६।

इति श्री स्थाणवाश्रमे पेषाख्यागिरेर्महिमावर्णनं नाम षष्ठः पटलः ॥

इति स्थाणु आश्रम में पेषनामक पर्वत की महिमा वर्णन में अमर चन्द्रिका नाम भाषा टीका का छठा पटल समाप्त हुआ है ॥३७॥

———

## अथ सप्तमः पटलः

श्री भैरवी उवाच

श्रुत्वा भवन्मुखाद्देव ! महिमानमनुत्तमम् ॥
नगस्य पिषिताख्यस्य प्रीताऽस्मि परमेश्वर! ॥१॥

श्री भैरवी जी बोले। कि हे परमेश्वर ! मैं आप के मुख कमल से पेषपर्वत की उत्तम महिमा सुनकर प्रसन्न हो गई हूं ॥१॥

अधुना श्रोतुमिच्छामि नगस्यापि महेश्वर ! ॥
प्रभावं च समुत्पत्तिं कथयस्वप्रसादतः ॥२॥

अब इस पर्वत की उत्पत्ति और प्रभाव सुनना चाहती हूं आप कृपा कर के कथन करें ॥२॥

श्री भैरव उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि शेषस्य नगरूपिणः ॥
प्रभवंच प्रभावं च सर्वपाप प्रणाशनम् ॥३॥

हे देवि ! सुनो मैं आपको अब इस पर्वत की उत्पत्ति तथा प्रभाव सुनाता हूं जो सब पापों के नाश करने वाला है ॥३॥

पुरा कृतयुगे देवि ! कृतं स्नानं हिमालये ॥
शिखरे वै महारण्ये ह्यमरेश्वरसन्निधौ ॥४॥
महादेवस्य पूजार्थं तथा तप्तुं तपः प्रिये ! ॥
त्रिदशैः सिद्ध गन्धर्व-देवजातिसमन्वितैः ॥५॥

हे प्रिये देवि ! पूर्वकाल में सिद्ध गन्धर्व जो देव जातियें हैं उनके साथ

देवता लोगों ने अमरेश्वर के समीप हिमालय के पवित्र शिखर में महादेव जी की पूजा और तप करने के लिए स्नान किया ॥४–५॥

एतस्मिन्नन्तरे कश्चिद्वातरूपधरो बली ॥
दैत्यन्द्रोऽभून्महावीर्यस्तपोगर्वेण गर्वितः ॥६॥
तत्राश्रमगतान्देवान्प्रेरयामास शक्तितः ॥
ततो देवाः सहेन्द्रेण शरण्यं परमेश्वरम् ॥७॥
निकटस्थं समाजग्मुः स्तुतिभिश्च प्रतुष्टुवुः ॥

इस समय पर वायु के बराबर रूपवाला कोई बड़ा बली राक्षस अपनी शक्ति, और तपस्या के अहंकार से भरा हुआ, उस आश्रम में आए हुए देवताओं को अपनी शक्ति से इधर उधर फैंकता हुआ । तब वे देवता लोग इन्द्र के साथ समीप स्थित महादेव जी की शरणमें गए और स्तुति करने लगे।६–७

देवा ऊचुः

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ! देव देव ! नमोस्तुते ॥८॥
नमस्ते देवदेवाय शम्भवे परमात्मने ॥
जगत्स्थितिविनाशानां हेतुभूताय ते नमः ॥६॥

देवता लोग बोले । हे कमल के समान नेत्रों वाले प्रभो ! आप को नमस्कार हो ॥८॥

हे देवताओं के देव सब को सुख देने वाले परमात्मन् तथा जगत् की उत्पत्ति रक्षा और विनाश करने वाले आप को हमारा नमस्कार हो ॥६॥

त्वं माता सर्वभूतानां त्वमेव जगतां पिता ॥
त्वं सुहृद्बन्धुरेवासि त्वत्तो नान्यो जगत्त्रये ॥१०॥

हे प्रभो ! आपही इस संसार के माता पिता मित्र बन्धु हैं आप से बढ़कर इन तीनों लोगो में और कोई नहीं है ॥१०॥

अनाथानां तु नाथस्त्वमगतीनां गतिस्तथा ॥
आर्तानामार्तिहर्ता त्वं त्वमेवशरणं विभो !॥११॥

हे विभो ! आप अनाथों के स्वामी हैं। और जिनका कोई आश्रय (आसरा) नहीं उनके आश्रय आप हो। दुःखियों के दुःख दूर करने हारे हो। और आप ही शरण पड़ों के रख वाले हो ॥११॥

स्तुवतामिति देवानां प्रादुरासीन्महेश्वरः ॥
उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवांस्तान्दुःखितांस्तदा १२

ऐसे देवताओं के स्तुति करते ही महादेव जी प्रकट हुए और दुःखित देवताओं को मधुर वाणी से कहने लगे ॥१२॥

सर्वं श्रुतं मया देवा दैत्येन्द्रस्य दुरात्मनः ॥
मया संवर्द्धितो दैत्यो हन्तुं नार्हः पुनश्च तम्॥१३

महादेव जी बोले ॥ हे देवता लोगो ! मैंने उस दुष्ट दैत्य की सब बातें सुन ली है। परन्तु उस दैत्य को मैंने वर दिया हुआ है। इस लिए मैं आप उसका नाश नहीं कर सकता ॥१३॥

तस्माद् व्रजत तं देवं शरणार्तिविनाशनम् ॥
भगवन्तं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥१४॥
क्षीरसागरमध्यस्थं शेषशायिनमेवच ॥
इति विसृज्य तान्देवानन्तर्धानं ययौ हरः ॥१५

इस कारण से आप शरणागतों की रक्षा करने हारे शंख-चक्र-गदा-धारी चतुर्बाहु क्षीरसमुद्र में शेषनाग पर सोने वाले विष्णु भगवान् जी की शरण में प्राप्त होवें। महादेव जी इस तरह देवताओं को वहां से विदा करके आप अन्तर्धान हो गए ॥१४-१५॥

ततो देवगणाः सर्वे हर्षसम्पूर्णमानसाः ॥
क्षीराब्धिं प्राप्य तीरस्थास्तुष्टुवुर्गरुडध्वजम् १६

तब वे सब देवता आनन्द से भरे हुए मन वाले होकर क्षीरसमुद्र के तीर पर पहुंच कर गरुड़ पर चढ़ने वाले विष्णु भगवान की स्तुति करने लगे॥

देवा ऊचुः

नमो नमो ह्यनन्ताय रूपाऽतीताय वै नमः ॥
नमः सर्वस्वरूपाय सर्वातीताय वै नमः ॥१७॥

देवता बोले ! अन्त तथा रूप से रहित और 'सर्व स्वरूप'' जैसे तत्त्वमसि आदि वेद बचनों से प्रतीत होता है, और सब से परे अर्थात् संसार में वर्तमान होने पर भी कर्मादि वासनाओं से शून्य जो आप हैं उन को हमारा नमस्कार हो ॥१७॥

गणेशाय गुणज्ञाय गुणातीताय वै नमः ॥
सर्वेशाय शरण्याय सर्वज्ञाय च ते नमः ॥१८॥

गणों के स्वामी और गुणों के जानने हारे सत्त्व-रज-तम आदि गुणों से अतीत (रहित) सब के स्वामी और शरणागत की रक्षा करने हारे सर्वज्ञ (सब बड़े से बड़े और छोटे से छोटे वस्तु को सदा जानने वाले) आप को नमस्कार हो ॥१८॥

वेद्याय वेदरूपाय वेदगम्याय ते नमः ॥
ध्येयाय ध्यानगम्याय ध्यानातीताय वै नमः॥१९

संसार में ज्ञान से साक्षात् करने योग्य वेदस्वरूप तथा वेद से जानने योग्य ध्यान करने योग्य तथा समाधि से चिन्तनीय और स्थूल दृष्टि में नहीं आने योग्य आप को नमस्कार हो ॥१९॥

जगत्कर्त्रे नमस्तुभ्यं जगद्भर्त्रे च वै नमः ॥
जगत्पालनसक्तायाऽचिन्त्याय चित्स्वरूपिणे ॥

जगत् के कर्ता और पालन पोषण करने हारे ज्ञान योग और ध्यान से विना मन में नहीं आने वाले आप को नमस्कार हो ॥२०॥

एवं स्तुतस्तु देवेशि! प्रसन्नोऽभूज्जनार्दनः ॥
उवाच वचनं देवान् सर्वदुःखनिवारणम् ॥२१॥

श्री भगवानुवाच

यूयं गच्छत देवेशा! नाकं शोकहरं परम् ॥
तं दुष्टं सकुलं हन्मि वातरूपं दितेः सुतम् ॥२२॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विष्णुर्भक्तानामार्तिनाशनः ॥
पातालात्फणिराजे वै प्रादुर्भूते जगत्पतिः ॥२३॥
शेषं रूढश्चतुर्बाहुः सलक्ष्मीकश्च सायुधः ॥
तदा चाज्ञापयामास शेषं वाताशनं हरिः ॥२४॥

इस प्रकार स्तुति किए हुए जनार्दन भगवान् प्रसन्न हुए और देवताओं को सर्व दुःखों के निवारण करने वाले वचन बोले ॥२१॥

श्री भगवान् जी बोले । हे देवता लोगो ! आप सब शोकों के विनाश करने वाले स्वर्गधाम को जाओ । और मैं उस दुष्ट वायुरूप दैत्य को वंश समेत नष्ट कर देता हूं ॥२२॥ इस प्रकार कहकर भक्तों के दुःख नाश करने हारे विष्णु भगवान् अन्तर्धान हो गए

तब पाताल से शेषनाग जी प्रगट हुए उस पर विष्णु चतुर्बाहु लक्ष्मी के साथ जगत् के स्वामी शस्त्रों के धारण करने हारे भगवान् आरूढ होके । तब वे भगवान वायु के खाने वाले शेषनाग को आज्ञा देने लगे ॥२१-२४

वातं पिबफणीन्द्र ! त्वं सहस्रवदनो लघु ॥
प्राणांस्तर्पय नागेश ? यतस्त्वं पवनाशनः ॥२५॥

हे सर्प राज ! आप हजार ही मुखों से शीघ्र वायु का पान करो। और इस वायु से अपने प्राणों की तृप्ति करो क्योंकि आप वायु के खाने वाले हो ॥२५॥

एवं भागवतं श्रुत्वा वचनं चामृतोपमम् ॥
प्रादुर्भूय च तं दैत्यं वायुरूपं पपौ क्षणात् ॥२६॥

शेषनाग जी इस प्रकार भगवान् के वचन जो अमृत समान थे सुन कर प्रकट होकर एक क्षण भर में वायुरूप दैत्य को भक्षण कर गए ॥२६॥

वाते शुष्के पुनः शेषः प्राभवद् गिरिमस्तके ॥
तदा प्रभृति ते देवाः निर्विघ्नाः स्वाश्रमेऽवसन्॥२७

वात रूप दैत्य के नाश होजाने के बाद पर्वत के शिखर पर उस दिन से शेषनाग ठहरे और उनकी कृपा से निर्विघ्न हुए देव भी सुखपूर्वक अपने आश्रमों में निवास करने लगे ॥२७॥

पुनः प्रोवाच भगवाञ्छेषं पवनभोजिनम् ॥
अत्र तिष्ठ फणीन्द्र ! त्वं भयं नाशय वातजम् २८

फिर भगवान जी ने शेषनाग से कहा कि हे सर्पराज ! तुम यहां ही ठहरो और वायु के भय को दूर करो । क्योंकि तुम वायु के भक्षण करने वाले हो ॥२८॥

तदा प्रभृति देवेशि ! नगोऽभूच्छेषसंज्ञकः ॥
स्वाश्रमेणा प्यसौ नागो वर्णितो योगिसत्तमैः ॥२९

हे देवेशि ! उस दिन से लेकर इस पर्वत का नाम शेषनाग पर्वत पड़ गया है ॥ और इसको उत्तम योगीश अपना आश्रम भी कहते हैं ॥२९॥

यत्र स्नात्वा श्रमं यांति सुखेन मनुजाः प्रिये ?
आश्रमेण लभे ल्लोकान् देवानामपि दुर्लभान् ॥३०

मेरे आश्रम अर्थात अमरनाथ गुहा को अनायास प्राप्त होते हैं और इस जगह स्नान करने से लोग उन उत्तम लोगों को प्राप्त होते हैं जो देवताओं को भी दुर्लभ हैं ॥३०॥

सुखेनात्र प्लुतो लोकस्तस्मान्नागोऽपि स्वाश्रमः ॥
स्वाश्रमोऽपि बुधैः प्रोक्तो नागराजोपि सुन्दरि !
यस्मात्सुखेन लब्धो वै स्वाश्रमस्त्रिदिवौकसैः ॥
अतोऽस्य दर्शनेनैव मुच्यन्ते पापराशिभिः ॥३२

यहां प्राप्त होकर लोग महासुख में (मग्न) डूब जाते हैं ! इस कारण इसको स्वाश्रम नाम से पुकारते हैं। और हे सुन्दरि ! बुद्धिमान् इसे स्वाश्रम तथा नागराज भी कहते हैं ॥

जिसकी कृपा से देवताओं ने अपने आश्रम को सुख से पाया इस कारण इसके दर्शन से यात्री लोग पापों के समूह से मुक्त हो जाते हैं ॥३२॥

दर्शनात स्पर्शनात् स्नानात दानाद्धोमाज्जपात्तथा।
स्वाध्याय स्तुति पाठाच्च ह्यनन्त पुण्य माप्नुयात् ३३

इस कैलाश के दर्शन और स्पर्शन करने से तथा इसके तालाब में स्नान करने से तथा जप वा हवन करने से और स्वाध्याय वा स्तुतिपाठ करनें से पुरुष अनन्त पुण्य को प्राप्त होता है ॥३३॥

कमलैः पूजनाद्यत्र स्थिरां प्राप्नोति चेन्द्रताम् ।
स्मरणादपि देवेशि ! मुच्यते पापसञ्चयैः ॥३४॥

इस स्थान पर कमलों से पूजन करने से पुरुष स्थिर इन्द्र पद को प्राप्त होता है । और इसके स्मरणमात्र से ही पुरुष पापों से छू जाता है ॥३४॥

इति ते कथितं सर्वं पृष्टं यद्धितकाम्यया ।
लोकानां शेषनागस्य स्वभावः प्रभवोऽपि च ॥३५

हे देवि ! जो तुमने लोगों के हित के लिए मेरे से पूछा था सो मैं इसकी उत्पत्ति तथा प्रभाव कह सुनाया है ॥३५॥

इति श्री स्वाश्रम [ अथवा ] शेषनाग पर्वत माहात्म्य वर्णन में अम चन्द्रिका नाम भाषा टीका का सप्तम पटल समाप्त हुआ ।

अष्टम पटल

श्री भैरवी प्रोवाच

अधुना श्रोतु मिच्छामि तीर्थं वै वायुवर्जनम्
कथं तत् क्षेत्रमित्याहुः पुण्यं वै पापनाशनम् ॥१

श्री भैरवी जी कहने लगीं । कि अब मैं पवित्र वायुवर्जन नाम तीर्थ की उत्पत्ति आदि सुनना चाहती हूं यह क्षेत्र किस प्रकार पवित्र और पा नाशक प्रसिद्ध हुआ ॥१॥

किमर्थं मठिकां तत्र कुर्वते प्रस्तरैः शुभैः ।
वद मे कृपया शंभो ! तत्र तीर्थे च किं फलम् ॥२

और इस तीर्थ पर सुन्दर पत्थरों से किस लिए मठिका [छोटे २ घर] बनानी और इसका क्या फल है । हे भगवन् ! कृपा करके यह बात मुझ से कहो

श्री भैरव उवाच

देवैः पिष्टाश्च दैत्यास्तु पृष्टतो नाम दानवः ।
श्रुत्वा समीरणो भूत्वा बबाधेदेवतास्तदा ॥३॥
वायुना परिभूताश्च देवास्ते शरणं गताः ।
देवदेवं महादेवं तुष्टुवुः परया गिरा ॥४॥

श्री भैरव जी बोले ? जब देवों ने दैत्यों का विनाश किया तो यह सुन कर उन में से पृष्टत नाम वाला दैत्य वायु में मिलकर देवों को दुःख देने लगा ॥३॥ उस वायु रूप दैत्यसे तिरस्कृत हुए देवता लोग महादेव की शरण में गए और उनकी उत्तम वाणियों से स्तुति करने लगे ॥४॥

नमो देवादिदेवाय शर्वाय शम्भवे भुवे ।
आदिमध्यान्तशून्याय पराय प्रभवेनमः ॥५॥

देवता लोग बोले । हे देवताओं के आदि देव ! कल्याण मंगल करने वाले तथा जगत के पैदा करने वाले महादेवजी ! आपको नमस्कार हो आदि, मध्य, और अन्त से रहित सब सामर्थ्य रखने वाले सबसे अच्छे आप को नमस्कार हो ॥५॥

नमोभैरव रूपाय भीमाय भयनाशिने ।
भयानकाय देवाय मञ्जुमेखलिने नमः ॥६॥

भैरव स्वरूप दुष्टों को भय देने वाले और भक्तों के भय को नाश करने हारे दुष्टों के लिए भयानक रूप धारण करने वाले भक्तों के लिए दिव्य रूप धारी—उत्तम मेखला [ तगड़ी ] को धारण करने हारे प्रभो ! आपको नमस्कार हो ॥६॥

नमोऽमृत स्वरूपाय ह्यपमृत्युविनाशिने ।
कलानिधिविभूषाय कालरूपाय ते नमः ॥७॥

अमृत स्वरूप और अप मृत्यु [खराब मौत] विनाश करने वाले चन्द्रमा से शोभित मस्तक को धारण करने हारे कालरूप आपको नमस्कार हो ॥७॥

शान्ताय श्वेतदेहाय शान्तभावाय ते नमः ।
अमरेशाय देवाय भूयो भूयो नमोनमः ॥८॥

शान्त स्वरूप ! भस्म के लगाने से सुफेद हुए शरीर वाले शांत स्वभाव वाले और देवताओं के स्वामी प्रकाश स्वरूप आपको नमस्कार हो ॥८॥

इति श्रुत्वा नुतिं प्रीत्या कृतां च सुरसत्तमैः ।
जगाद भगवाञ्छम्भुर्देवान् परमया मुदा ॥९॥

इस प्रकार से देवताओं से की हुई स्तुति को सुनकर भगवान्, महादेव जी बहुत खुशी से देवताओं से कहने लगे ॥९॥

श्री भगवानुवाच

श्रुतं मया पूर्वमेव बाधनं दानवस्य च ।
अत्रैव मठिकां कृत्वा देवास्तिष्ठन्तु निर्भयाः ॥१०॥

श्री महादेवजी ने कहा । दानवों के दिए हुए दुःख को मैंने पहिले ही सुन लिया है आप यहां ही मठिका बनाकर निर्भय होकर ठहरो ॥१०॥

मठिकासु च देवेशाः ! कुरुध्वं वायुवर्जनम् ।
इत्थं कृत्वा ततो देवा मठिकास्तत्र प्रस्तरैः ॥११॥

हे देवता लोगो ! यहां मठिका [ मढ़िएं ] बनाकर वायु की रुकावट करदो तब से देवता लोग वहां पत्थरों से मठिका बनाकर रहने लगे ॥११॥

स्थितास्तत्रैव देवेशि ! मठिका सु सुखान्विताः ।
वायुः शशाम सुमहान् दैत्यः परमदारुणः ॥१२॥

हे देवेशि ! वहांही देवता लोग छोटी २ कुटिया बनाकर सुखसे रहने लगे तब वह अति कठिन [सखत] स्वभाव वाला वायुरूप राक्षस भी शान्त हो गया ॥१२॥

दर्शयामास तत्राग्रं रूपं दैत्यपुरन्दरः ।
दृष्ट्वा दैत्यं तूग्र रूपं वज्रमिन्द्रः समादधे ॥१३॥

परंच फिर एक समय उस दैत्य ने अपना उग्ररूप भी दिखलाया । और उसे देखकर इन्द्र ने वज्र को उठाया ॥१३॥

जघान दानवं देवस्तत्रैव वायुवर्जने ।
तद्वायुवर्जनं नाम तीर्थभूतं सुरार्चितम् ॥१४॥

और उसी स्थान पर उस दैत्य को मार दिया । तबसे लेकर वह वायु वर्जन नाम वाला देवताओं से पूजित तीर्थ प्रसिद्ध हुआ ॥१४॥

मठिकारचनात्तत्र पाषाणैर्देवतार्थतः ।
अनन्तपुण्यमाप्नोति वायुवर्जनदर्शनात् ॥१५॥

यहां पाषाणों से देवताओं के लिये छोटे २ घर बनाने और इस तीर्थ के दर्शन से मनुष्य अनन्त पुण्य को प्राप्त होता है ॥१५॥

महापातकयुक्तो वा युतो वा चोपपातकैः ।
मुच्यते पातकैर्घोरैर्दृष्ट्वा वा वायुवर्जनम् ॥१६॥

ब्रह्महत्यादि महा पातक और गोहत्यादि पापों से युक्त पुरुष भी इस तीर्थ का दर्शन करके सब बड़े २ पापों से रहित होजाता है ॥१६॥

वायुर्वजनदेशे च स्नात्वा पीत्वा च सुन्दरि !
नरो न लिप्यते पापैः महापातकजैरपि ॥१७॥

हे सुन्दरि ! वायु वर्जन देशमें स्नान तथा आचमन करनेसे पुरुष महापातकों से पैदा हुए २ सब पाप फलों से छूट सकता है ॥१७॥

स्नात्वा कृत्वा च दानं वै तिलान्न मपिसुन्दरि !
अनन्तफलमाप्नोति पुण्ये वै वायुवर्जने ॥१८॥

हे सुन्दरि ! इसके तीर्थ पर स्नान और तिलों का दान करके पुरुष अनन्त फल को प्राप्त होता है ॥१८॥

वायुवर्जनदेशे तु कृत्वा श्राद्धमतन्द्रितः ।
आपयेच्च पितॄंस्तृप्तिं शतकल्पं न संशयः ॥१९॥

इस तीर्थ पर सावधान हो श्राद्ध कर यात्री पुरुष पितरों को सौकल्प तक तृप्त प्राप्त कर सकता है इसमें कोई संशय नहीं ॥१९॥

कृत्वा तु मठिकां देवि ! पूजयेत् विधि पूर्वकम् ॥
अर्पयेद् देवप्रीत्यर्थं दक्षिणाभिः समन्विताम् ॥२०॥

हे देवि ! मठिका बनाकर और वहां देवताओं को विधि से पूजाकर देवता की प्रीति के लिये दक्षिणा सहित उस का दानकर अच्छे ब्राह्मण को देना चाहिये ॥२०॥

मठिका ये न कुर्वन्ति तत्रैव वायुवर्जने ॥
दारुणं नरकं यान्ति शतकल्पं न संशयः ॥२१॥

जो पुरुष वायु वर्जन तीर्थ में ( मठिका ) पत्थरों का छोटा सा घर

बना कर नहीं दान करते वे सौ कल्प तक नरक में वास करते हैं यह बात निस्सन्देह है ॥ २१ )

यो नकुर्यान्महादेवि ! स्नानं दानं जपं हविः ॥
स याति नरकं घोरं तत्तीर्थं तस्य निष्फलम् ॥२२॥

हे देवि ? जो पुरुष इस स्थान पर स्नान-दान-जप-हवन-नहीं करता-वह घोर नरक को प्राप्त होता है और उसकी तीर्थयात्रा निष्फल हो जाती है ॥ २२ ॥

इति ते कथितं देवि ! तीर्थं वै वायुवर्जनम् ॥
श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत महापातकपञ्जरात् ॥२३॥

हे भगवति ? यह मैंने आप को वायुवर्जन नामक तीर्थ का फल सुना दिया है जिस के सुनने अथवा पढ़ने से पुरुष महापापों से भी छूट जाता है ॥ २३ ॥

॥ श्रीभैरव्युवाच ॥

वद सत्यं महादेव ! शुष्कं वैसर उत्तमम् ॥
हेतुना केन देवेश ! शुष्कीभूतं महासरः ॥ २४ ॥

श्री भैरवी जी बोले ! हे महादेव जी ? यह तालाव जो सूखा हुआ दीख रहा है यह किस कारण सूखा हुआ है ॥ २४ ॥

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

शृणु शीले ! प्रवक्ष्यामि शुष्कीभूतं सरोवरम् ॥
येन विज्ञातमात्रेण नरो मुच्येत संशयात् ॥ २५ ॥

श्री भैरव जी बोले ॥ हे उत्तम स्वभाव वाली देवी ? आप श्रवण करो । जिस तरह से यह तालाव सूख गया है क्योंकि इस के सूखने के कारण को सुन कर पुरुष संशय से रहित होजाता है ॥ २५ ॥

हतशेषाणि रक्षांसि तिरोभूतानि वैह्रदे ॥
जलचराकारभूतानि तत्रैव निजमायया ॥ २६

हे देवी ! जब महादेव वा इन्द्र जी ने राक्षसों को नाश किया तो उस समय जो दैत्य बच गये वे जल के जीव होकर इसी तालाब में छि गये ॥ २६ ॥

चिरकालेन तत्रैव पुनर्देवान् बबाधिरे ॥
कुर्वन्तो मुनिसंघानां विघ्नांश्चैव समन्ततः ॥२७

कालान्तर के बाद वे दैत्य फिर देवताओं को दुःख देने लगे—और मुनियो को भी सब तरह से विघ्न डालने लगे ॥ २७ ॥

एकदा तत्र तौ देवि ! पार्वती परमेश्वरौ ॥
स्वेच्छया ह्यागतौ वीक्ष्य वाधितानमराँश्चतैः॥२८
राक्षसैर्भक्तवात्सल्याद्देवी देवमुवाचतम् ॥
जगदुत्पत्तिरक्षाणां कारिणी पार्वती गिरा ॥ २६
दयालो ! परमेशान ! पश्यैतान् मुनिसत्तमान् ॥
विघ्नितान् राक्षसौघैश्च पीड़ितानपि शंकर !॥३०॥

हे देवि ! एक समय वहां शिव पार्वती स्वेच्छा से विचरते हुए आए और पार्वती जी ने उन राक्षसों से पीड़ित हुए देवताओं को देख कर देवताओं पर कृपा दृष्टि से जगत की उत्पति और रक्षा करने वाली पार्वती जी ने महादेव जी को कहा हे दयालो ? परमेश्वर ? राक्षस समूह से विघ्नित और पीड़ित उत्तम मुनियों पर कृपा दृष्टि करो ॥ २८–२९– ३० ॥

श्रुत्वा देवीवचः सोऽपि देवांस्तान्दृषिसत्तमान् ॥
वीक्ष्य विघ्नीकृतान्दैत्यैः हूङ्कारमकरोत्तदा ॥३१॥

इस प्रकार पार्वती के वचन को सुन कर महादेव जी ने स्वयं दैत्यों से दुःखी किए हुए देवता और ऋषियों को देखकर हुंकार किया ॥ ३१ ॥

हुंकारेण हता दैत्या मग्नास्तेतु सरोवरे ॥
मग्नान् दृष्ट्वा ततो देवा ? शशाप सर उत्तमम् ॥३२

उस हुंकार से मारे और डरे हुए वे दैत्य इस सरोवर में डूब गए हे भैरवी देवि ? इस सरोवर में डूबे हुए दैत्यों को देखकर महादेवजी ने शाप दिया ॥ ३२ ॥

मुनि विघ्नकरान्यस्माद्रक्षसि दैत्यदानवान् ॥
शुष्कंभव सरस्तस्माद्धव्यकव्य विवार्जितम् ॥३३॥
इतिशप्तं सरोदिव्यं सद्यः शुष्कमभूत्किल ॥
शुष्कीभूताच्च सरसो निर्गतं रक्षसां गणम् ॥ ३४ ॥

हे सरोवर ? जिस कारण तुम मुनियों को विघ्न करने हारे दैत्यों की रक्षा करते हो। इस कारण तुम देवता और पितरों के अर्पण करने योग्य जल दान से रहित हुआ शुष्क दशा को प्राप्त हो अर्थात तेरे में जरा भी पानी न रहेगा इस प्रकार शाप दिया हुआ वह तालाब सूक गया और उस के सूकने पर राक्षस वहां से निकल गए ॥ ३४ ॥

नाशयामास सगणैः पाशमुद्गर पाणिभिः ॥
तदा प्रभृति देवेशि ? तत्तु शुष्कं सरोऽभवत् ॥३४॥

हेदेवेशि ? हाथों में पाश और मुद्गरों के धारने वाले अपने गणों से

वे महादेव उनका विनाश करने लगे ॥ उस दिन से लेकर वह सरोव
सूख गया है ॥ ३४ ॥

शेषो रक्षोगणो यस्माद्गतो विघ्नकरः प्रिये !
तस्मान्नरो व्रजेन्मौनं तत् स्थानं जगदम्बिके! ३

हे प्रिये ! बाकी बचे राक्षस लोग भय के मारे भाग गए इस लिए
हे जगन्मातः ! उस स्थान से पुरुष मौन होकर यात्रा करे ॥ ३५ ॥

गतं रक्षोगणं दृष्ट्वा तौ गतौ च यथासुखम् ॥
महाकालीं पूजयित्वा विधिवद्यात्रिकोजनः ॥ ३६॥
ततो गच्छेन्नादशब्दं कुर्वन्तं भैरवं गणम् ॥
यत्रानकादिभिः ख्यात मानकोपलसंज्ञकम् ॥३७

राक्षस गणों के चले जाने पर वे दोनों शिव पार्वती भी सुख
अपने आश्रम को प्राप्त हुए यात्री पुरुष महाकाली का पूजन करके त
नाद शब्द को करते हुए ॥ भैरव ( भय देने वाले ) गण की शरण
जिस स्थान में आनक ( नगारा ) आदि वाद्यों से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ
आनकोपल नाम [ पत्थर का नगारा ] देव विराजमान है ॥ ३६–३७

पूजां तत्र प्रकुर्वाणः मुच्यते पापकोटिभिः ।
मिष्टान्नं स्थापयंस्तत्र सुखमक्षयमश्नुते ॥३८

वहां उक्त देवता की पूजन करने द्वारा क्रोड़ों ही पापों से मुक्त होसकता
है और मिष्टान्न को वहां रखने द्वारा पुरुष अक्षयसुख को प्राप्त होता
है ॥ ३८ ॥

श्री भैरवी प्रोवाच

वद सत्यं महादेव पुण्यां पञ्चतरङ्गिणीम् ॥
या दृष्ट्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मान्तरभवैरघैः ॥३९॥

श्रीभैरवी जी बोले ।। हे महादेव ? आप सत्य रूप से पञ्च तरङ्गणी
वर्णन करें जिस को देखकर पुरुष जन्मान्तरों के किए हुए पापों से
हित होसकते है ।। ३६ ।।

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

यमक्षय्यमाप्रोति यत्र स्नानान्महेश्वर ? ।।
नाद्यत्र महेशान ! फलमाप्रोति यागजम् ॥४०॥

॥ श्रीभैरव जी बोले ॥

हे महेश्वर ? जहां स्नान से पुरुष अक्षय पुण्य को प्राप्त होता है, और
महादेव ? जहां दान करने से यज्ञ के फल को प्राप्त होता है ।। ४० ।।

णु सुन्दरि वक्ष्येऽहं पुण्यां पञ्चतरङ्गिणीम् ॥
स्नात्वा महेशानि ! हयमेधफलं लभेत् ॥४१॥

श्रीभैरव जी बोले हे सुन्दरि ? आप श्रवण करें मैं आप को पवित्र
ञ्चतरङ्गणी नदी का इतिहास सुनाता हूं। जिस जगह स्नान करने से पुरुष
श्वमेध के फल को प्राप्त होता है ।। ४१ ।।

राताण्डवलग्नस्य नृत्यमानस्य भूपतेः ।
मोदातिशयात्तस्य कपर्दः शिथिलोऽभवत् ॥४२॥

पूर्वकाल में त्रिलोकी स्वामी महादेव जी ताण्डव नाम नृत्य करने लगे
ए थे अतिआनन्द से उनका जटाजूट शिथिल ( ढीला ) होगया ॥ ४२ ॥

ततोवै पञ्चधा देवी प्रादुर्भूता कपर्दतः ।
गंगा भगवती देवी महापातकनाशिनी ॥४३ ॥

तब उस जटाजूट से पञ्चधारा वाली भगवती गङ्गा प्रकट हुई। जो
महापापों के दूर करन हारी है ॥ ४३ ॥

या पंचधा महेशानि ! कपर्दान्निर्गताऽभवत् ॥
सैव प्रोक्ता पुराविद्भिः नदीपञ्चतरङ्गिणी ॥४४॥

हे महेशानि ! जो भवती गङ्गा पञ्च प्रकार की धारा रूप से जटाजूट से निकाली है उसी का नाम विद्वानों ने पंचतरङ्गिणी नदी रक्खा है ॥ ४४

नद्यां पंचतरङ्गिण्यां स्नानं कुर्यादतन्द्रितः ॥
मुच्यते पातकैर्घोरैर्ब्रह्महत्यादिकोटिभिः ॥४५॥

जो पुरुष पञ्चतरङ्गिणी नदी में आलस्य रहित होकर स्नान करता है वह ब्रह्म हत्यादि घोर पापों से भी छूट जाता है ॥ ४५ ॥

कुरुक्षेत्रे प्रयागे वा गङ्गायां नैमिषेथऽवा ॥
स्नात्वा दत्वाच विधिवद्यत्फलं लभते नरः ॥४६॥
तत्फलं समवाप्नोति स्नात्वा पञ्चसरिज्जले ॥
श्राद्धकर्तुश्च तृप्यन्ति शतकल्पं पितामहाः ॥४७॥

विधि के अनुसार कुरुक्षेत्र–प्रयाग–गङ्गा अथवा नैमिषारण्य में स्नान तथा दान करने से पुरुष जिस फल को प्राप्त होता है उसी फल को पुरुष पंचतरङ्गिणी में स्नान करने से ही पाते हैं ॥ और यहां पर श्राद्ध करने हारे के पितर सौ कल्प तक तृप्ति को प्राप्त हुए रहते हैं ॥ ४६ ४७॥

गौर्हिरण्यं सुवासश्च क्षौमं चन्दनमेव च ।
कुङ्कुमागुरुकर्पूरमृगनाभ्यादि सुन्दरि ! ॥४८॥
यो ददाति सुविप्राय स शिवलोकमाप्नुयात् ॥
आरुहेदुच्च शिखरं ततो डामरकं श्रयेत् ॥४९॥

हे सुन्दरि ! इस तीर्थ पर गौ सुवर्ण ( सोना ) सुन्दर पट्टवस्त्र चन्दन कुंकुम ( केसर ) अगर कपूर कस्तूरी आदि जो पुरुष सत्पात्र

ब्राह्मण को देता है वह शिवलोक को प्राप्त होता है इस के अनन्तर ऊंची ऊंची चोटियों वाले पहाड़ पर यात्री पुरुष चढ़े और डामरक नाम देवता की शरण में प्राप्त होवे ॥ ४९ ॥

दृष्ट्वा डामरकं तत्र शिलीभूतं महागणम् ॥
पुण्यमाप्नोति मनुजो ह्यश्वमेधादियागजम् ॥५०॥
महापातकयुक्तो वा युतो वा ह्युपपातकैः ॥
पुण्यं डामरकं दृष्ट्वा मुच्यते पापकोटिभिः ॥५१॥

वहां शिलारूप डामरक का दर्शन कर पुरुष अश्वमेधादि यज्ञों के फल को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥ महापातक और उपपातकों से युक्त पुरुष भी डामर देवता का दर्शन कर उन सब पापों से रहित हो जाता है ॥५१॥

बहुनात्र किमुक्तेन पूजाप्रक्रमणं तथा ॥
कृत्वामरेश्वरस्यैव दर्शनार्हो भवेत्पुमान् ॥५२॥
इति प्रोक्तं मयादेवी माहात्म्यं परमं शुभम् ॥
गङ्गायाः पञ्चभागायाः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥५३

इति श्री वायुवर्जनादि पञ्चतरङ्गिणी महिमान्तवर्णनं नाम सप्तमः पटलः

हे देवि ? बहुत कहने से क्या प्रयोजन है । यात्री डामरक देव की पूजा तथा परिक्रमा करने से ही अमरनाथ जी के दर्शन के योग्य होता है अन्यथा नहीं ॥५२॥ भैरव जी कहते हैं हे देवि ? मैंने आप को पञ्चतरङ्गिणी नाम नदी का शुभ माहात्म्य सुना दिया है । अब क्या सुनना चाहती हो ॥ ५३ ॥

इतिश्री वायु वर्जनादि पञ्चतरङ्गिणीपर्यन्त के माहात्म्य वर्णन में अमर चन्द्रिका नाम भाषा टीका का आठवां पटल समाप्त हुआ ॥

॥ श्रीभैरव्युवाच ॥

कोऽसौ डामरको नाम भवता कथितस्तुयः ॥
गणः कथं शिलीभूतो वदसत्यं महेश्वर ? ॥१॥

श्रीभैरविजी पूछती है कि हे प्रभो ? जो आपने डामरक नाम कथन किया है वह कौन देवता है । और किस प्रकार पाषाण रूप हुआ है । यह मेरे प्रति सत्य रूप से वर्णन करो ॥ १ ॥

श्री भैरव उवाच

शृणु वक्ष्ये महेशानि ? चरितं डामराश्रयम् ॥
येन कर्मविपाकेन शिलीभूतोगणेश्वरः ॥२॥

श्रीभैरवजी बोले कि हे महेशानि ? आप डामर देवता की कथा का श्रवण करें जिस कर्म के प्रभाव से गणों का स्वामी शिला रूप को प्राप्त हुआ ॥ २ ॥

यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्विघ्नसङ्घैरनेकशः ॥
पुरानर्तनशीलस्य धूर्जटेः सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥३॥
स्कन्दं क्रीडयतस्तस्य सन्ध्या कालो ऽत्यगात्प्रिये ॥
संध्यातिवाहनात्तस्य चिन्ता मनसि चाऽभवत् ॥४
चिन्तामग्नस्य तस्यैव देवी पृष्टवती मुहुः ॥
किमेवं चिन्तासि देव ? काचिंता भगवंस्तव ॥५॥
वद सत्यं महादेव मनो मे शर्म नाऽश्नुते ॥
इति श्रुत्वा वचो देव्याः प्रियायाः परमेश्वरः ॥६॥
प्रावदद्भगवान् देवीं संध्याकालो ऽत्यगान्मम ॥
संध्यालोपान्मया प्राप्ता चिन्ता च महती प्रिये ॥७॥

जिस के श्रवण से पुरुष विघ्नों से रहित हो जाता है। पूर्वकाल में दोनों सन्ध्याओं में नृत्यकर तथा कार्तिक स्वामी के साथ खेलने में लगे हुए महादेव जी का संध्या काल व्यातीत हो गया और हे प्रिये? सन्ध्याकाल व्यातीत हो जाने से महादेव जी के मन में चिन्ता उत्पन्न हुई चिन्ता में मग्न महादेव जी को देवी बारम्वार पूछने लगी ॥ ३—४ ॥ हे प्रभो? आप क्या सोच रहे हो और आप को किस बात की ऐसी चिन्ता है ॥ ५ ॥ हे महादेव? आप यह मेरे प्रति सत्य कथन करें बिना श्रवण किए मेरा मन धैर्य को धारण नहीं करता। इस प्रकार देवी के बचन को श्रवण कर महादेव बोले कि हे प्रिये? मेरा सन्ध्याकाल सन्ध्या के बिना व्यातीत हो गया है, इस कारण मुझे यही भारी चिन्ता उत्पन्न हुई है ॥ ६—७ ॥

इति श्रुत्वा वचस्तस्यदेवदेवस्य धूर्जटेः।
प्रत्युवाच पुनर्देवी भगवन्तं सनातनम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार देवताओं के भी देवता श्री महादेव जी का वचन सुनकर पार्वती देवी सनातन भगवान् से फिर प्रार्थना करने लगी ॥ ८ ॥

अयं महागणो देव डमरूवादनेरतः॥
सन्ध्या वेदनार्थञ्च चिरंतिष्ठतु हेशिव ? ॥ ९ ॥

कि हे स्वामिन्? यह महागण डमरू के बजाने में प्रीति करने हारा संध्या समय के वाधन के लिए यहां देर तक ठहराया करे ॥ ९ ॥

इति श्रुत्वा वचो देव्या तथेत्युक्त्वा महेश्वरः॥
हासयन् षण्मुखं तत्र पुनर्देव्या सहाऽलपत् ॥१०॥

इस प्रकार देवी के वचन को सुनकर वैसे ही होगा ऐस कहकर कार्तिक स्वमी को हंसाते हुए महादेवजी फिर देवी के साथ बात करने लगे ॥१०॥

तदाप्रभृति देवेशि ! तत्र डामरुकंगणम् ॥
तस्थौ सन्ध्या वेदनार्थं भवस्य सुरपूजिते ॥ ११ ॥

देवताओं से वन्दना करने योग्य हे देवेशि ! उस दिन से लेकर डामरुक नाम महागण महादेव जी को संध्याकाल जतलाने के लिए वहां स्थित रहा ॥ ११ ॥

एकदाक्रीडने देवी ! रतस्य तनुजेन च ॥
गणः प्रमादी निद्रायां लीनोऽभूत्सुर वन्दिते ! ॥१२॥
संध्याकालः पुनस्तस्य व्यत्ययगाच्च कपर्दिनः
विमृश्य संध्यालोपं स देवदेवोभवः स्वयम्॥१३॥
क्रुद्धः शशाप गिरिजे महाडामरुकं गणम् ॥
यस्मान्निद्रावशेनापि संध्या लोपस्त्वया कृतः ॥१४॥

हे देवेशि ? एक समय में महादेव जी कार्तिक स्वामी के साथ क्रीड़ा में लगे थे तो वह प्रमाद ( गफलत ) से युक्त गण निद्रा को प्राप्त होगया। इसी कारण महादेव जी का संध्या समय फिर व्यतीत हो गया ॥ हे देवि ! वे महादेव जी संध्या काल को व्यतीत हुए जानकर क्रोध युक्त होकर उस गण को शाप देते हुए कि जिस कारण तुमने निद्रावश होकर मेरे संध्याकाल को व्यतीत किया है इस कारण तुम यहां शिला रूप होकर देर तक ठहरो ॥ १२-१३-१४ ॥

मम तस्माच्चिरन्तिष्ठ शिलीभूतो गणाधिप ? ॥
शापविष्टः कम्पमानो विज्ञाप्तिं शापमोचने ॥१५॥

अकरोच्च शिवाग्रेऽसौ जगाद तं शिवो गणम् ।
शापमुक्तिर्भवेन्नैव तव भैरव कर्हिचित् ॥१६॥

शाप पाकर कांपता हुआ वह गण शापसे छूटने के लिये महादेव जी से प्रार्थना करने लगा । तब महादेव जी उस गण को बोले कि-हे भैरव ! तेरा शाप से छुटकारा कदापि नहीं होगा ॥ १५-१६ ॥

किन्तु मद्दर्शनापेक्षी यः कश्चिन्मानवो भुवि ।
तेनादौ तव पूजा वै कार्या प्रक्रमणन्तथा ॥१७॥

किंतु मेरे दर्शन के लिए जो पुरुष आवेगा वह प्रथम तुम्हारी पूजा और परिक्रमा करेगा ॥ १७ ॥

इति शप्त्वा गणन्तत्र देवदेवो हरः स्वयम् ।
तस्थौ ध्यानस्थितो देवि ! चिरंतत्र महेश्वरः ॥१८॥

हे देवि ! इस प्रकार गण को शाप देकर महादेव जी वहां देर तक योग ध्यान में लीन हो गए ॥ १८ ॥

तदा प्रभृति देवेशि ! महाडामरको गणः ।
दृषद्रूपोऽभवत्तत्र रत्नपर्वतमूर्धनि ॥१९॥

हे देवि ! भैरवि ! उस दिन से लेकर महाडामरक नाम गण रत्ननाम के शिखर पर पाषाण रूप होकर रहता है ॥ १९ ॥

यः कश्चिन्मानवो लोके गणं डामरमर्चयेत् ।
स प्रयाति शिवस्थानमिति सत्यं वदामि ते ॥२०॥

हे देवि ! जो पुरुष डामरक नाम गण की संसार में पूजा करता है वह शिव धाम को प्राप्त होता है ॥ २० ॥

यः कश्चिदपि चेशानि ! पुण्यंगर्भगृहंश्रयेत् ।
गर्भात्स मुच्यते जन्तुरिति मे वचनं प्रिये !

हे ईशानि ! जो कोई पुरुष पवित्र गर्भयोनि को आश्रित अथ उस में से निकल कर अमर गुहा को जावे वह गर्भ से ( अर्थात् जन्मान से ) छूटकर शिवरूप हो जावेगा हे प्रिये ! यह मेरा सत्य वचन है ॥२१

॥ श्रीभैरव्युवाच ॥

गर्भागारश्च कोदेव ! किमर्थं तत्र स्थापितः ।
किं फलं निःसृतानाञ्च नराणां च कलौ युगे ॥२

श्री भैरवी जी बोले ॥ हे देव ! गर्भ योनि क्या चीज है ? और कि कारण उसे वहां स्थापन किया है । कलियुग में वहां से निकलने वालों क्या फल प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

॥ श्रीभैरव उवाच ॥

शृणुवक्ष्ये महादेवि ! गर्भागारमनुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातक सञ्चयात् ॥२

श्री भैरव जी बोले ॥ हे महादेवि ! सबसे उत्तम गर्भ योनि की कथा श्रवण करो जिसके सुनने से पुरुष महापातकों से रहित होजाता है ॥२३

यदा कैलाशशिखरे क्रीडतस्तस्य धूर्जटेः ।
आज्ञया चाभवन्नन्दी द्वारपालो महेश्वरि ! ॥२४

हे महेश्वरि ! जब महादेव कैलाश के शिखर पर नृत्यकरने में लगे हुए थे उस समय उनकी आज्ञा से नन्दी द्वारपाल के काम पर लगा हुआ था ॥

दण्डं गृहीत्वा तत्रैव द्वारेऽत्तिष्ठन्महाबली ।
तत्र नन्दिनमायाता-देवाः शिवदिदृक्षया ॥२५॥

जब वह महाबली नन्दी दण्ड को लेकर द्वार पर स्थित था तो उस समय शिवजी के दर्शनार्थ देवता लोग आए ॥ २५ ॥

निषिद्धा नन्दिना तत्र युयुधुस्ते परस्परम् ।
अभिभूतस्ततो देवि! समीपं शूलिनो ययौ ॥२६॥

हे देवि ! जब नन्दी ने देवताओं को रोका तो देवता लोग उसके साथ युद्ध करने लगे । तब देवताओं से हारा हुआ नन्दी महादेव जी के पास पहुंचा ॥ २६ ॥

दण्डं त्यक्त्वा प्रणम्येशं विज्ञप्तिं च चकार सः ।
भगवन् करुणासिन्धो ! लोकनाथ जगत्पते ! ॥२७
उद्विजामि भृशंत्रस्तो देवेभ्य उक्तवानिति ।
श्रुत्वा नन्दिवचो देवि हरः प्रोवाच तं मुदा ॥२८॥

नन्दी दण्ड को छोड़कर महादेवजी को प्रणाम कर प्रार्थना करने लगा कि हे भगवन् ! लोगों के स्वामिन् ! जगत पालक ! कृपा सिन्धो ? देवताओं ने मेरा तिरस्कार किया है यह नन्दी का वचन सुनकर हे देवि ! महादेव जी हर्ष के साथ बोले ॥ २७-२८ ॥

गृहाण दण्डं भो नन्दिन् ! किं कुर्वन्ति च ते सुराः
गर्भद्वारमिदं सम्यक् स्थापयाऽऽशु समन्ततः ॥२९

महादेव जी बोले ॥ हे नन्दी ! तुम दण्ड को ग्रहण करो देवता लोग तुम्हारे को हानि नहीं पहुंचा सकते । और तुम द्वार के चारों ओर दीवार बनाकर रास्ते में गर्भयोनि को रख दो ॥ २९ ॥

द्वारि तत्रैव तिष्ठ त्वं प्रवेक्ष्यन्ति न ते सुराः ॥
यतो निस्सरणे शक्तिं न लभन्ते वरान्मम ॥३०॥

और तुम द्वारपर ही ठहरो । देवता लोग गर्भयोनि में प्रवेश नहीं क सकेंगे । क्योंकि वहां से निकलने की उनमें शक्ति नहीं । क्योंकि उनको मेरा वर है कि तुम गर्भवास को नहीं प्राप्त होगे यदि अज्ञान से गर्भवा करोगे तो फिर तुम जन्म जन्मान्तर को प्राप्त होगे ॥ ३० ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा महेशस्य महागणः ॥
महाप्रस्थं समुत्थाप्य गर्भागारे न्यधापयत् ॥३१

इस प्रकार महादेवजी का वचन सुनकर उस महागण ने गर्भगृह के आगे एक बड़ा भारी पत्थर रख दिया जिसमें योनि जैसा छिद्र था ॥३१॥

गर्भद्वारान्निसरेद्यो दिदृक्षुरमरेश्वरम् ॥
न पुनर्गर्भ वासस्य दुःखभाग् मानुषो भवेत् ॥३२

जो मनुष्य श्री अमरनाथ जी के दर्शन की इच्छा करता है वह गर्भ योनि में प्रवेश कर तथा उससे निकल कर अमरनाथ के दर्शन कर लेने से पुरुष गर्भ वास से छूट जाता है ॥ ३२ ॥

महापापवनं छेत्तुं चेदिच्छेत्प्रसभं प्रिये ! ॥
तदाश्रयेत्तु देवेशं गर्भागारविनिस्सृतः ॥३३॥

हे प्रिये ? जो पुरुष जन्म जन्मान्तर के पापरूपी बन को काटना चाहे वह गर्भयोनि से निकलकर श्री अमरनाथ जी का दर्शन करे ॥ ३३ ॥

स्नात्वामरावतीं नाम्ना नदीं परमपावनीम् ॥
तत्पङ्कसितदेहश्च बहुवस्त्रविवर्जितः ॥३४॥
प्रलपञ्छिव ! पन्थानं देहि मे परमेश्वर ॥
तदा रोहेत् गिरिवरं त्यक्त्वा क्रोधादिविक्रियाम् ॥३५

अमरावती परमपवित्र नदी में स्नान कर उसी के कीचड़ को शरीर में मलकर सफेद हुआ २ अल्प ( थोड़े ) वस्त्रों को धारण कर अर्थात् भोजपत्र कौपीन वा सणियां वा रेशमी धोती से शरीर ढककर हे परेश्वर ! सन्मार्ग प्रदान करो ऐसा कहता हुआ और मुख से शिव शिव उच्चारण करता हुआ क्रोध मोहादि को त्याग कर उस श्रेष्ठ पर्वत पर चढ़ना आरम्भ करे ॥३४–३५॥

प्रणमेद्देवदेवेशं गुहास्थममरेश्वरम् ॥
स्तुवीत ह्यनयास्तुत्या भक्त्या तद्गतमानसः ॥

पुरुष गुहामें स्थिर अमरेश्वर देवताओं के देव भगवान् को नमस्कार करें। और उस प्रभुके चरणों में चित्त लगाकर भक्तिसे इस प्रकार वारम्वार स्तुति करे ॥ ३६ ॥

दयां कुरु हे, दयासागर हर हर शिव शङ्कर शम्भो,
दयां कुरुहे, दयासागर, हर हर शिव शङ्कर शम्भो

हे दयासागर, पापोंके हरनेहारे कल्याण दायक प्रभो, कृपा करो ॥३७॥

सङ्कटभूधरभेदनिसूदन शशधरशेखर नरकारे ॥

पर्वतकी तरह बढ़े हुए संकटोंके हरनेवाले, चन्द्रकलाको सिरपर धारण करनेवाले, नरकोंके शत्रु, कल्याणकारिन्, पापहरनेवाले, प्रभो, दयाकरो॥३८॥

भवसागरतारक हे, त्र्यम्बक, भवभयहरशङ्कर शंभो

हे संसार रूपी समुद्र से पार उतारने वाले, तीन नेत्रधारी, संसार के भयोंको दूर करनेहारे, कल्याणके दाता हे प्रभो दया करो ॥ ३९ ॥

दीन दयाकर हे, परमेश्वर, अजर अमर हे कामपते

हे दीनोपर कृपा करनेवाले, परमऐश्वर्यवान, सर्वदा एकरस कामेश्वर, आप कृपा करो ॥ ४० ॥

दशमुखपूजितपादसुपुष्कर दितिप्रियङ्करशमनारे

रावणासे पूजित हुए पाद पद्मवाले, तथा दैत्यों के नाश करनेहारे प्रभो कृपा करो ॥ ४१ ॥

मनुजन सुखकर हे विश्वेश्वर विश्वपालनपर त्रिपुरारे

मनुष्य मात्रको सुख देनेवाले, हे संसार के स्वामिन्, विश्वके पालनहारे, त्रिपुरासुरका नाश करने वाले, प्रभो, कृपा करो ॥ ४२ ॥

इत्थं सुकोविदवंशसमुद्भवदेवकृतानुति शिवद्वारे
सफला भवतु मे शंकर कृपया देवदेव हे त्रिपुरारे ।

इस प्रकार पण्डितों के वंश में उत्पन्न देवताओं से शिवजीके दरवाजे पर की हुई स्तुति, हे त्रिपुर विनाशिन्, हे कल्याण प्रद, सूर्यादियों के प्रकाशक, हे प्रभो, आप की कृपासे यह स्तुति सफल हो ॥ ४३ ॥

इत्थं स्तुवन्नरः कुर्याद्दर्शनं गव्हरान्तरे ॥
विधूतसर्वसंकल्पः शिवध्यानैकतत्परः ॥४४॥
शुद्धान्तः करणे देवि ! पश्येद्देवमुमापतिम् ॥
नृत्यं कुर्वंश्च विधिवद्धर्षेण पूजनं तथा ॥४५॥
यथोक्तनिगमेनैव कुर्यात्प्रणति पूर्वकम् ॥
यस्य दर्शनमात्रेण तद्गणत्वमवाप्नुयात् ॥४६॥

इस प्रकार स्तुति करता हुआ पुरुष गुफामें महादेव का दर्शन करे । दर्शन से सर्वपाप रहित हुआ और शिव ध्यानमें तत्पर हुआ, शुद्ध अन्तः करणवाला पुरुष पार्वती पति का दर्शन करे, तथा नृत्य करता हुआ विधिपूर्वक महादेवजी को शास्त्रानुसार प्रणाम कर, पूजन करे । जिसके दर्शनसे पुरुष महादेवजी का परम भक्त हो जाता है ॥ ४४ ॥ ४५ । ४६ ॥

नरो वा यदि वा नारी पुण्यकृत्पातकीचयः ॥
सर्वे समानगतयः सत्यं जानीहि सुन्दरि ! ॥४७॥

हे सुन्दरि ! पुरुष, अथवा स्त्री, पुण्यकृत, अथवा पापी, श्रीमहादेवजी के दर्शन से सम्पूर्ण समान गतिको प्राप्त होजाते हैं ॥ ४७ ॥

इति डामरादि गर्भयोनि निःसरणवर्णनं नवमःपटलः

डामरेश्वर से लेकर गर्भयोनि से निकलनेके माहात्म्यकी अमर चन्द्रिका नाम भाषा टीकाका नवमां पटल समाप्त हुआ ॥

## दशमः पटलः ।

इति श्रुत्वा वचो देवी भैरवोक्तं सुधामयम् ॥
प्रहर्षमतुलं लेभे पप्रच्छ विनयान्विता ॥१॥

भैरव जी के अमृतमय वचनोंको सुनकर अत्यन्त हर्षित हुई भैरवी नम्रता पूर्वक उनसे पूंछने लगी ॥ १ ॥

श्री भैरव्युवाच

स्मारं स्मारं महेशान ! पुण्यमाहात्म्यमुत्तमम् ॥
तीर्थानां हि विशेषेण निवृत्तास्मि भवार्णवात् ॥२॥

भैरवी जी बोली कि हे प्रभोः तीर्थों के परमपवित्र महात्म्य को सुनकर मैं विशेष करके संसार रूप समुद्र की मोहमाया से पार होगई हूं ॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि ह्यमरेशं महेश्वरम् ॥
कथं स ह्यमरेशाख्यो गुहास्थोऽप्यभवत किल ॥३॥

अब मैं अमरेश महादेवजी की अमृतसदृश कथा सुननी चाहती हूं कि वे भगवान् गुफा में स्थिर हुए भी अमरेश अर्थात् देवताओं के स्वामी कैसे कहलाए ॥ ३ ॥

नदी च परमा दिव्या कथं सा ह्यमरावती ॥
तत्सङ्गमस्य माहात्म्यं वद मे कृपया प्रभो ॥

हे प्रभो ! जो परम दिव्य अमरावती नदी है उसके संगम के माहात्म्य को आप मेरे प्रति कृपाकर कथन करें ॥४॥

श्री भैरव उवाच

साधु साधु महाभागे ! प्रश्न एष सुदुर्लभः ॥
कृतः पूजितया देवि ! त्वया लोकहितप्रदः ॥५॥

श्री भैरव जी बोले ॥ हे भाग्यवति ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है । इस प्रश्न के सुनने से लोगों का बड़ा हित होगा, साधारण पुरुष तो ऐसे प्रश्न करही नहीं सकता ॥५॥

शृणु वक्ष्ये महातीर्थं ह्यमरेशस्य सुन्दरि ! ॥
यच्छ्रुत्वा प्रविमुच्येत महापातककोटिभिः ॥६॥

हे सुन्दरि ! श्री अमरनाथ के महातीर्थ को मैं तेरे प्रति कहता हूं । जिसके श्रवण से पुरुष करोड़ों पापों से रहित होजाता है ॥६॥

सदसच्च तदानासीदादावपि महेश्वरि ! ॥
नियतिरभवत्तस्मादुत्पन्नोऽहन्ततः प्रिये ! ॥७॥
अहमा सर्वमभवज्जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥
क्रमाद्देवर्षिपितरो गन्धर्वोरगराक्षसाः ॥८॥
यक्षा भूतगणाश्चापि कूष्माण्डा भैरवास्तथा ॥
मनुष्या जम्बुकाः क्रूरा दैत्यदानवपुङ्गवाः ॥९॥

एते चान्ये च नियतेः समुत्पन्ना महेश्वरि ! ।
चतुर्दशविधः प्रोक्तः भूतानां सर्गकः किल ॥१०॥

हे महेश्वरि ! आदिकाल में वह ब्रह्म था जिसे सत् तथा असत् ऐसे नहीं कह सकते थे अर्थात् मन और वाणी से अतीत था उससे पहिले भ्रमरूपी प्रकृति उत्पन्न हुई । प्रकृति से अहंकार उत्पन्न हुआ अहंकारसे स्थावर (पर्वतादि) तथा जङ्गम ( मनुष्यादि ) रूप संसार की उत्पत्ति हुई इसी क्रम से देवता, ऋषि, पितर, गन्धर्व, राक्षस, सर्प, यक्ष, भूतगण, कूष्माण्ड तथा भैरव, इन देवतादि गणों की तथा मनुष्य, गीदड़, कठिनस्वभाव राक्षस और दानव श्रेष्ठ तथा ऐसे ही और सबकी उत्पाति हुई । हे महेश्वरि ! इसप्रकार मायासे १४ प्रकार की भूतों की सृष्टि पैदा हुई है ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

मृत्युस्तानग्रसत्सर्वान्देवानपि सवासवान् ।
देवास्ते मृत्युना ग्रस्ता व्याकुला ह्यभवन् प्रिये ॥

परन्तु इन्द्रादि देवता सभी मृत्युके वशमें हुए थे । हे प्रिये ! इससे वे सब मौतसे घबरा गये ॥ ११ ॥

समेत्य शरणं जग्मुः शरण्यं परमेश्वरम् ।
तुष्टुवुः परया प्रीत्या तमोनाशकशङ्करम् ॥१२॥

सब देवता मिलकर शरणागतकी रक्षा करनेहारे श्रीमहादेवजी की शरणमें प्राप्त हुए और अति प्रसन्नतासे तमोनाशक ( अविद्याके नाश करनेवाले ) महादेवजी की स्तुति करनेलगे ॥ १२ ॥

देवा उचुः ।

नमः शिवाय देवाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
नमश्चिच्चन्द्रिकोद्बोधप्रकाशानन्दरूपिणे ॥१३॥

देवता बोले—हे सर्वव्यापक, प्रकाश और आनन्दस्वरूप प्रभो ! आपको

नमस्कार हो । हे अन्तःकरण के अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर उसमें ज्ञानरूप चन्द्र से प्रकाश करनेवाले आपको नमस्कार है ॥ १३ ॥

परमार्थदशास्थाय स्थाणवे विश्वभानवे ।
नमोऽन्यायाप्यचिन्त्याय चितिज्ञाय चिदात्मने

सदा अतिउत्तम दशामें रहने वाले, एकरसजगत् के प्रकाशक ज्ञानस्वरूप चिन्तन करनेके अयोग्य और तद्गतहोनेसे उसी भगवान् की कृपासे ध्यानकरनेयोग्य चेतनसत्ता के जाननेवाले ज्ञानस्वरूप आप को नमस्कार हो ॥१४॥

चिच्चन्द्रराशिनिश्शेषध्वान्तमोहापहारिणे ।
विमर्शिने विधिज्ञाय विधिगम्याय ते नमः ॥१५॥

चैतन्यरूपचन्द्रमाओं के प्रकाशसमूहों से सम्पूर्ण अज्ञानरूपी अन्धेरे के नाशकरने वाले, विचारशील, तथा विधि के जाननेवाले, वेदवचनोंसे प्राप्तहोनेयोग्य, आपको नमस्का हो ॥ १५ ॥

नमो विधिनिषेधाय विधिज्ञपतये नमः ।
निषेधज्ञाय विश्वाय नमो विश्वोपकारिणे ॥१६॥

विधि और निषेधरूपसे वर्णनकरनेयोग्य, विधिके जाननेवाले क्षेत्रज्ञ जीवात्माके अधिपति, निषेधके जाननेवाले, संसाररूप, और संसार उपकारी आपको नमस्कार हो ॥ १६ ॥

विश्वरूपाय देवाय विश्वावासाय ते नमः ।
निश्शेषज्ञाय देवाय तत्स्वरूपाय ते नमः॥१७॥

तथा विश्वरूप जगत्के आधार सबकुछ जानने हारे और सर्वस्वरूप आपको नमस्कार हो ॥ १७ ॥

इडापिङ्गलरूपाय नमस्तन्मध्यवर्तिने ॥
सुषुम्णामध्यमायाऽपि सूक्ष्माय शम्भवे नमः ॥१८

इडा और पिंगल नाड़ी के स्वरूप और उनके बीचरहने वाले सुषुम्णा नाड़ीके मध्य में भी रहने वाले आपको हमारी नमस्कार हो ॥ १८ ॥

नमस्ते सर्वमृग्याय सूक्ष्ममार्गार्थदर्शिने ॥
नमो नियतिरूपाय तत्वरूपाय ते नमः ॥१९॥

सब प्राणियों से ढूंडने योग्य सूक्ष्ममार्ग और अर्थोंको दिखानेवाले प्रारब्धस्वरूप, और तत्वस्वरूप, हे प्रभो ! आपको नमस्कार है ॥ १९ ॥

महत्तत्वाय देवाय सूक्ष्मतत्त्वाय ते नमः ॥
नमोऽमृताय देवाय नमोऽमृतस्वरूपिणे ॥२०॥
मृत्युञ्जयाय देवाय भूयो भूयो नमो नमः (अर्धं)

महत्तत्व यानी बुद्धिस्वरूप तथा सूक्ष्मतत्त्व अर्थात् प्रकृति स्वरूप और विनाश रहित अमृतस्वरूप मृत्युको जीतने वाले, आनन्दस्वरूप, आपको वारम्बार नमस्कार हो ॥ २० ॥

इति श्रुत्वा तु देवानां स्तुतिं परमपावनीम् ॥
हरो गम्भीरया वाचा देवांस्तान्प्रत्युवाच ह ॥२१

इसप्रकार देवताओं की परमपवित्र स्तुति को सुनकर महादेवजी गम्भीर वाणीसे देवताओं के प्रति बोले ॥ २१ ॥

महादेव उवाच ।

किमर्थमागता यूयमाकुलाः सुरसत्तमाः ॥
कथयध्वं यतः सर्वं मदधीनं यदस्ति वै ॥२२॥

महादेवजी कहते हैं कि हे देवताओंमें से उत्तम देवताओ, आप बड़े व्याकुल होकर किस कामके लिये आये हो । जो कुछ मेरे करने योग्य काम हो वह सम्पूर्ण मुझ से कहो ॥२२॥

देवा ऊचुः ।

इति तस्य महेशस्य वचः श्रुत्वा सवासवाः ॥
प्रत्यूचुस्तं हरं देवा मृत्युर्ग्रसति नोबलात् ॥२३॥

इसप्रकार महादेवजी का वचनसुनकर इन्द्र के सहित देवता बोले कि हे देवादिदेव, मृत्यु हमको बलात्कारसे बाधा करता है ॥ २२ ॥

यतः स मृत्युर्नश्येन्नो न ग्रसेच्च बलेन हि ॥
तत कुरुष्व महादेव भक्तानामार्तिनाशन ॥२४॥

भक्तों के दुखों को हरने वाले, हे महादेवजी जिसप्रकार मृत्यु हम लोगों को बाधा न करे ऐसा कोई उपाय आप करें आपकी बड़ीकृपा होगी ॥२४॥

श्री भैरव उवाच

श्रुत्वा देववचः सौम्यं महेशः प्रत्युवाच तान् ॥
मृत्यूपायं करिष्यामि सहध्वं सुरसत्तमाः ॥२५॥

श्रीभैरव जी बोले-कि महादेवजी देवताओं के वचन को सुनकर बोले कि, हे उत्तम देवताओ, आप सहारा करो । मैं आपकी मृत्युके भयसे रक्षा करूंगा ॥ २५ ॥

गृहीत्वा शिरसस्तत्र हरश्चन्द्रकलां स्वयम् ॥
संपीड्य देवानवदन्मृत्युभेषजमुत्तमम् ॥२६॥

महादेवजी ने सिरसे चन्द्रमाकी कलाको उतारकर निचोड़ा और देवताओं को कहा कि, यह आप के मृत्युरोगकी अतिउत्तम औषधि है ॥ २६ ॥

सम्पीडनान्निसृता या च धारा पारमिका प्रिये
सैव भूता नदी पुण्या नाम्ना वै ह्यमरावती ॥२७॥

उस चन्द्रकला के पीड़ने से जो उत्तम अमृत की धारा निकली यही वह अमरावती नाम पवित्र नदी कहलाती है ॥ २७ ॥

ये विन्दवश्च्युता देवि ! शरीरेऽस्य महात्मनः ॥
ते भस्मरूपतां प्राप्य च्युताश्चाश्यानतां गताः

उस चन्द्रकला के निपीड़ने के समय जो अमृतके बिन्दु महादेवजी के शरीरपर पड़े उस से वे शुष्क होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। और वे ही भस्मस्वरूप होकर इस गुफामें विराजमान हैं ॥ २८ ॥

प्रेम्णा तेषां महादेवि ! शिवोऽपि द्रवतामगात् ॥
ते तु दृष्ट्वा शिवं तत्र द्रवीभूतं महेश्वरि ! ॥२९॥
तुष्टुवुर्वाग्भिरर्थ्याभिः प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः ॥
स्वं पुनर्दर्शयामास देवानां हितकाम्यया ॥३०॥

हे महेश्वरि ! उन देवताओंके साथ प्रेमको दिखाते हुए महादेवजी स्वयं द्रवीभूत होगये और वे सब देवतालोग अमृतस्वरूप हुए महादेवजी को देखकर स्तुति करने लगे और बारम्बार नमस्कार करने लगे। तब श्रीशङ्कर ने देवताओंके हितके कारण फिर अपना स्वरूप उनको दिखाया, इसलिये प्रत्येक पक्ष में अमृत पिघलता और जमता रहता है ॥ २९ ॥ ३० ॥

रसोप्यश्यानतां प्राप्य लिंगरूपोऽभवत्प्रिये !
लिंगरूपं हरं वीक्ष्य द्रवीभूतं महेश्वरि ! ॥३१॥
पुनः पुनः प्रणेमुस्ते भवं कारुणिकं परम् ॥

देवाँस्तुतिपरान्दृष्ट्वा प्रोवाच सुरसत्तमः ॥३२॥
हरः परमया वाचा शृणुध्वं देवसत्तमाः ॥
यस्माद्भवद्भिर्दृष्टं मे प्रेमलिंगं दरीगृहे ॥३३॥
तस्मान्न मृत्युर्युष्मान् वै बाधते मदनुग्रहात् ॥
इहैव ह्यमरा भूत्वा प्रयात शिव रूपताम् ॥३४॥

हे प्रिये, वह रस सूखकर कठिन हुआ २ लिंगरूप होगया, हे महेश्वरि लिंगरूप महादेव को फिर द्रवीभूत हुए देखकर परमदयालु उस भगवान् वे देवता वारम्वार नमस्कार करने लगे ॥ वे सब उत्तम देवता शिवस्तु कर रहे हैं भगवान् उन्हें देखकर परम दयायुक्त वाणीसे बोले, कि, हे देवता जिस से मेरा लिंग शरीर तुमने गुफामें देखा है इस कारण मेरी कृपासे आप को मृत्यु का भय न होगा और तुम यहांपर ही अमर होकर शिवरूप जाओ ॥ ३१ ॥३२॥ ३३ ॥ ३४ ॥

इतः प्रभृति मे लिङ्गं ह्यमरेशाख्यमुत्तमम् ॥
पुण्यं परतरं देवास्त्रिलोके ख्यातिमेष्यति ॥३५॥

हे देवताओ ! अबसे लेकर मेरा यह अनादि लिङ्गशरीर त्रैलोक्य अमरेशनाम से प्रसिद्ध होगा ॥ ३५ ॥

नत्वा च दण्डवद्देवा लिङ्गं तदमरेश्वरम् ॥
ततः प्रदक्षणीकृत्य स्वं स्वमालयमाययुः ॥३६॥

देवता लोग उस अमरेश्वर भगवान् के लिङ्ग शरीर को नमस्कार और परिक्रमा करके अपने २ स्थान में चले गये और सत्तारूप से उस गुफामें भी रहे ॥ ३६ ॥

श्रीभैरव उवाच

इति दत्वा वरं देवानमरेशो महेश्वरि ! ॥
तदाप्रभृति लीनोऽभूद्गिरिदर्य्यन्तरे हरः ॥३७॥

श्रीभैरवजी बोले-हे महेश्वरि ! वह प्रभु देवताओं को यह वर देकर उस दिन से लेकर गुफा के अन्दर लीन होकर रहने लगे ॥ ३७ ॥

अमां सोमकलां प्राप्य देवानां हित काम्यया ॥
मृत्युनाशं चकाराशु तस्माद्ध्यमरेश्वरः ॥३८॥

जिस कारण भगवान शिवजी ने अमा नामवाली सोम (चन्द्रमा) कला को धारण करके देवताओं की मृत्यु का नाश किया था, इसलिये इसका नाम अमरेश्वर पड़ा है ॥ ३८ ॥

मृत्युहीना यतो देवि ! ईश्वरेण कृताः सुराः ॥
ततः प्रोक्तः पुराविद्भिरमरेश्वरसंज्ञकः ॥३९॥

हे देवि ! जिस कारण देवताओं को ईश्वर ने अमर किया अर्थात मृत्यु से बचाया है, इसीलिये पहिले के इतिहास जानने वाले पण्डितों ने इन का नाम अमरेश्वर प्रसिद्ध किया है ॥ ३९ ॥

भवरोगश्च गृह्णाति भक्तानाञ्चेश्वरः स्वयम् ॥
यद्दर्शनात्ततः प्रोक्तं ह्यमरेशाख्यमुत्तमम् ॥४०॥

भक्तों के जन्मरूपी रोग को आप लेलेता है अर्थात दूर करता है, इस लिये आपका नाम अमरेश्वर प्रसिद्ध है ॥४०॥

अमां प्रभृति पूर्णान्तं कलां गृह्णाति चेश्वरः ॥
ततः प्रोक्तश्च तन्त्रज्ञैर्भगवानमरेश्वरः ॥४१॥

जिस कारण भगवान् महादेवजी ने अमावस्या से लेकर पूर्णिमा कला को ग्रहण किया है, इस कारण से इनका नाम अमरेश्वर पड़ा है।

यद्बिन्दुरसनश्चैव जरामरणनाशनम् ॥
मोक्षैश्वर्यप्रदं यस्मात्प्रोक्तं ह्यमरसञ्ज्ञकम् ॥४२॥

जिस कारण इनके लिङ्ग शरीर के अमृतरस का बिन्दु भी पिया हुआ जरा मरण का नाशक, मोक्ष और ऐश्वर्य देने वाला है। इसी कारण इनका नाम अमरेश्वर पड़ा है ॥४२॥

इदं रसमयं लिङ्गं महाप्रेमसमुद्भवम् ॥
सोमरसप्रदं देवि ! तव स्नेहात्प्रकाशितम् ॥४३॥

यह रस स्वरूप लिङ्ग शरीर महाप्रेम से उत्पन्न हुआ अमृत रस देने वाला है। हे देवि ! तुम्हारे स्नेह से प्रकाशित किया है ।।४३॥

यात्रां कृत्वातु देवेशि ! स्नात्वामरवती जले ॥
भस्मना लिप्य चांगानि मोक्षमाप्नोति मानवः॥४

हे देवि ! शास्त्रोक्त रीति से यात्राकरके तथा अमरावती में स्नान कर और अङ्गों पर भस्मलेपकर पुरुष मुक्ति को प्राप्त होता है ॥४४॥

कृत्वा तु ताण्डवं देवि ! गुहायाञ्च सुहर्षितः ॥
स रुद्रः कथितो ह्येको नरः परमपावनः ॥४५॥

हे देवि, जो पुरुष गुफा में ताण्डव नृत्यादि बड़ी प्रसन्नता से करता है वह पुरुष परम पवित्र रुद्ररूप हो जाता है ॥४५॥

यः सवासा गुहायाञ्च पश्ये ल्लिङ्गमनुत्तमम् ॥
स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४६॥

जो पुरुष बहुत से वस्त्र तथा अशुद्ध वस्त्र पहनकर ही गुफा में महादेव जी के उत्तम लिङ्ग शरीर का दर्शन करता है वह पुरुष तब तक घोर नरकमें वास करता है, जब तक १४ इन्द्र राज्य कर चुकते हैं ॥४६॥

यः पश्येद्भस्महीनाङ्गो रसलिङ्गं सनातनम् ॥
स कुष्ठी च भवेद्देवि ! जन्तुर्जन्मनि जन्मनि ॥४७

हे देवि ! जो मनुष्य अंगों को भस्म लगाए बिना सनातन रस लिंग का दर्शन करता है वह जन्मजन्मान्तर में कुष्ठी ( कोढ़ी ) होता है ॥ ४७ ॥

यात्रामकृत्वा यो देवि ! पश्येच्चेदमरेश्वरम् ॥
स याति दारुणान् घोरान्नरका नेकविंशतिम् ॥४८

हे देवि ! जो पुरुष शास्त्रोक्त प्रकारसे यात्रा को न करके अमरेश्वर भगवान के लिंग शरीर का दर्शन करता है, वह पुरुष २१ नरकों में पड़ता है ॥ ४८ ॥

योऽकृत्वा ताण्डवं देवि ! पश्येद्गिरि गुहान्तरे ॥
सुधा लिङ्गं भवत्येव तीर्थद्रोही न संशयः ॥४९॥

जो पुरुष नृत्य न करके गुफा में रसलिंग का दर्शन करता है वह तीर्थ द्रोही कहलाता है इसमें कोई संशय नहीं ॥ ४९ ॥

योऽपूज्य प्रतियात्येव नरोऽमरगुहान्तरम् ॥
चतुराशीतिलक्षाणि नरकाणि प्रयाति सः ॥५०॥

जो पुरुष गुफा में प्राप्त हो बिना पूजन के चला आता है, वह चौरासी लक्ष योनि को प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

योऽदत्वा पुनरायाति ह्यमरेशगुहान्तरात् ॥
स याति नरकं घोरं दारुणं कालसूत्रकम् ॥५१॥

जो अमरगुफा में प्राप्त हो, बिना दान किए हुए चला आता है, वह पुरुष कालसूत्र नामक महाघोर नरकमें जा गिरता है ॥ ५१ ॥

भ्रूणहा गुरुतल्पी च सुरापः स्वर्णहारकः ॥
एनं दृष्ट्वा महेशानि ! ह्यमरेश्वरसंज्ञकम् ॥ ५२ ॥
महापातकयुक्तो यः युतो वा ह्युप पातकैः ॥
दृष्ट्वा रसमयं लिङ्गं सद्योमुच्येत सुन्दरि ॥ ५३ ॥

हे पार्वति ! गर्भपात करने हारा, तथा गुरु की शय्या पर आरूढ़ होने वाला, और शराब पीने वाला, तथा सुवर्ण चुराने वाला, अथवा गौ हत्यादि उपपातक और ब्रह्महत्या आदि महापातकों का करने वाला श्री-अमरनाथ जी के रसमय लिङ्गशरीर का दर्शन कर उसी समय सब पापों से रहित होजाता है ॥ ५२–५३ ॥

महाक्रोधी लोभमोहाभिभूतःस्वर्णस्तेयी च परजायाभिगामी छिद्रप्रेक्षी साधुनिन्दारतश्च दम्भाचारेऽनृतवागल्पबुद्धिः ॥ ५४ ॥
दृष्ट्वा देवं ह्यमरेशाख्यलिङ्गं द्रवीभूतं पर्वतस्यान्तरे च ॥ मुच्येत्तस्मात्पापसंघाच्च देवि ! सत्यं सत्यं नानृतं ते वदामि ॥ ५५ ॥

हे देवि ! महाक्रोधी, लोभ मोहसे युक्त, सुवर्ण चुराने तथा परस्त्री-सङ्ग करने वाला, दूसरों के दोषों को देखने वाला, तथा साधु पुरुषों की निन्दा करने वाला, लोगों को ठगने के लिये धर्म करने हारा तथा मिथ्यावादी और अल्प बुद्धि वाला पुरुष भी पर्वत की गुफामें द्रवीभूत हुए

लिङ्ग का दर्शन करता है, वह पाप समूह से रहित हो जाता है। हे देवि ! मैं तुझे सत्य कहता हूं, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ५४-५५ ॥

चान्द्रायणैर्महाकृच्छ्रैः शतैः सन्तपनैश्च यत् ॥
फलमप्नोति यद्देवि ! तत्प्राप्नोत्यस्य दर्शनात् ॥५६॥

हे देवि ! महाकृच्छ्र चान्द्रायण व्रतों से तथा सैकड़ों सांतपन व्रतों से जो फल प्राप्त होता है, वह फल पुरुष को इस लिंगशरीर के दर्शन करने से होजाता है ॥ ५६ ॥

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च नैमिषे कुरुजाङ्गले ॥
गवां कोटिसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥५७॥
तत्फलं समवाप्नोति ह्यमरेशस्य दर्शनात् ॥(अर्ध)

कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य, प्रयाग, तथा कुरुजांगल में करोड़ों गऊओं के दान करने से जो फल प्राप्त होता हैं, वह फल श्री अमरनाथजी के दर्शन से होता है ॥ ५७ ॥

सुसूक्ष्म्यैः श्वेतवासोभिर्मृगकुङ्कुमकेसरैः ॥
कर्पूरैः स्वर्णपुष्पैश्च रौप्यैर्वापि महेश्वरि ॥ ५८ ॥
पूजयित्वामरेशाख्यं लिङ्गं दिव्यं सुधामयम् ॥
स एव रुद्रो भवति न पुनस्तन्यपो भवेत् ॥५९॥

हे महेश्वरि बारीक श्वेत वस्त्रों से तथा कस्तूरी कुङ्कुम, केसर कपूर, सोने के फूलों और रुपयों से सुधा स्वरूप उत्तम श्री अमरनाथ जी के लिङ्ग-शरीर का पूजन कर यात्री पुरुष रुद्ररूप होजाता है। वह फिर माता के दूध को नहीं पीता अर्थात उसका फिर जन्म नहीं होता।

नारी वा पुरुषो वापि पूजयेल्लिङ्गमुत्तमम् ॥
स याति शिवसायुज्यं यत्र गत्वा नशोचते ॥६०

पुरुषों और स्त्रियों को श्री अमरनाथजी के लिङ्गशरीर का पू करना चाहिये। जो प्राणी ऐसा करता है वह शिव स्वरूप हुआ २ शोक दियों से रहित होजाता है ॥ ६० ॥

अमरेशं महालिगं दृष्ट्वा स्पृष्टा कलौ नरः ॥
सद्योह्यमरतां याति सत्यं सत्यं वरानने ॥६१॥

हे श्रेष्ठ मुखचन्द्रवाली ! श्रीअमरनाथजी के लिङ्ग शरीर के दर्श स्पर्शन करके कलियुग में पुरुष अमर रूप होजाता है इसमें कोई सन्देह क अवसर नहीं ॥ ६१ ॥॥

पीत्वा ह्यमरधाराञ्च पतितान्तु गुहान्तरे ॥
सोपि याति शिवस्थानं यत्र नास्ति कृताऽकृतम्

जो पुरुष ऊपर से टपकती हुई अमृतधारा को पान करता है वहभ शिवधामको प्राप्त होजाता है। जिसमें पुरुष को कृत और अकृत एकस ही मालूम होता है अर्थात सब कर्म नष्ट होजाते हैं जैसे किए वैसे ही न किए उसके लिए एकसे हैं ॥ ६२ ॥

द्रष्टुं ह्यमरनाथस्य पदं यस्तु ब्रजेत् गृहात् ॥
पदे पदेऽश्वमेधानां यज्ञानां लभते फलम् ॥६३॥

जो पुरुष श्रीअमरनाथजी के दर्शन के लिए घरसे बाहर पांव भर भी निक लता है वह पैर पैर में अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥

कपोतांस्तत्र दृष्ट्वा तु पक्षिणो रुद्ररूपिणः ॥
रुद्र-रूपमवाप्नोति जय शब्दंब्रुवन्मुहुः ॥६४॥

यात्री पुरुष श्रीअमरनाथ की अमर गुफा में रुद्ररूप कबूतरों को देख कर जयशब्द का उच्चारण करते हैं वे रुद्ररूप को प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥

श्री भैरव्युवाच

कपोताः के गणास्तत्र कथं कुत्र स्थिता प्रभो ! ॥
वदमे कृपया शम्भो ! लोकानां हितकाम्यया ॥६५॥

श्री भैरवीजी बोले। हे कल्याणदायक प्रभो ! कौन से शिवगण कबूतर हुए हैं और क्यों कपोतरूप को प्राप्त हुए हैं और कहां विराजमान हैं यह इतिहास लोगों पर कृपा करके मेरे प्रति कथन करें ॥ ६५ ॥

श्री भैरवउवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि कपोता येऽभवन्किल ।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्जीवहत्यादिपातकात् ॥६६

श्री भैरवीजी बोले ॥ हे देवि ! कपोतों की कथा को आप श्रवण करें, जिसके श्रवण करने से पुरुष जीवहत्यादि महापापों से भी रहित हो जाता है ॥ ६६ ॥

यदा प्रभृति देवेशि ! महाडामरको गणः ॥
तदा प्रभृति तत्रैव स्थापितास्ते गणा मया ॥६७॥

हे देवेशि ! जिस दिन से लेकर यह डामरक नाम गण मैंने यहां स्थापन किया है उसीदिन से यह गण भी मैंने यहां स्थापन किये हैं ॥६७॥

एकदा नृत्यतस्तस्य संध्यायाश्चैव धूर्जटेः ॥
स्पर्धया कुरु इत्यूचुः गणास्ते सुरवन्दिते ॥६८॥

हे देवताओं से वन्दने योग्य भगवति ! एक समय महादेवजी सन्ध्या समय नृत्य कर रहे थे तो यह गण आपस में ईर्षा द्वेष से कुरु कुरु शब्द कहने लगे ॥ ६८ ॥

अतः क्रुद्धोमहादेवोगणानशपदोजसा ॥
यस्मात् कुरु कुरुशब्दं कुर्वाणाःसुचिरं मुहुः॥

इस कारण क्रुध होकर महादेवजी ने बड़े बल के साथ कहा कि देरतक मेरे नृत्यकाल में कुरु कुरु शब्द करते रहो इस लिए तुमको दिया है ॥ ६९ ॥

तस्मात् कुरु कुरु शब्दं कुर्वाणा स्थ चिरं गण
कपोतरूपास्तीर्थेऽस्मिन्विघ्नसंघापहारिणः ॥७

जाओ तुम कुरु २ करने हारे कबूतर पक्षी बनो । और यहां दे कुरु कुरु शब्द करते हुए संपूर्ण विघ्नों को दूर करते हुए चिर प ठहरो ॥ ७० ॥

इत्थं शप्तास्ततो देवि! हरेण परमात्मना ॥
जाताः कपोतरूपास्ते तीर्थे विघ्नापहारिणः॥७

हे देवि ! इस प्रकार महादेवजी से शाप को प्राप्त हुए वे गण क रूपको धारण कर यात्रियों के विघ्नों को हरते हैं ॥ ७१ ॥

यो दृष्ट्वा तु गुहान्तःस्थान् कपोतान्न नगात्प्रिये
अवारुहेद्गिरेस्तस्मात्तीर्थद्रोही स्मृतो बुधैः ॥७

हे प्रिये ! जो यात्री लोग गुफा में स्थित हुए कबूतरों को उन्नत स्थ में स्थित होकर न देखे बिना इस पर्वत से उतर आता है वह पुरुष तीर्थद्रो कहलाता है ॥ ७२ ॥

दर्शनीयास्तत्र तत्र कपोता गणसत्तमाः ॥
महापापहराः प्रोक्ता यात्रिभिः पारमार्थिकैः ॥७

वहां जो महादेवजी के उत्तम गण पापोंके हरनेहारे कबूतर हैं। यात्री लोगों को उनका दर्शन करना चाहिए। ॥ ७३ ॥

स्नात्वा वै ह्यमरावत्यां दृष्ट्वा तां वा समन्ततः ॥
अमरेश्वरतां याति ततः प्रोक्तामरावती ॥७४॥

जिस कारण इसमें स्नान करने से अथवा भली प्रकार इसका दर्शन करने से पुरुष अमरेश्वर ( शिवरूप ) होजाता है। इसलिये इस नदी का अमरावती नाम रक्खा है ॥७४॥

अमरेत्याख्यदेवेन निर्मितेयं महानदी ॥
अतस्तत्र नरः स्नात्वा सद्यो मुच्येत संकटात् ॥७५॥

अमर नामक देवता ने इसको निर्माण किया है इस कारण इसमें स्नान करने हारा पुरुष जल्दी संकट से छूट जाता है ॥ ७५ ॥

कलिकल्मषघोरविनाशनं रसलिङ्गंसमुदीरितंप्रिये
शुपाशविनाशनकारकंह्यमरेशेति नाम परं सुखदायकम्

हे प्रिय ! कलियुग में उग्र पापों के नाश करने हारा कर्मबन्धन के छुड़ाने हारा अमरेश नामक रसलिङ्ग परमसुख के देने हारा है ॥ ७६ ॥

यः करोति महापूजां सुधालिंगस्य सुन्दरि ! ॥
स याति शिवसायुज्यमिति सत्यं वदामि ते ॥७७॥

हे सुन्दरि ! जो पुरुष सुधा ( अमृत ) लिंग का बड़े समारोह के साथ पूजन करता है। वह शिवरूप होजाता है यह मैं आपको सत्य कहता हूं ॥७७॥

सिद्धिलिंगमिदं देवि ! बुद्धिलिंगमिदं प्रिये ॥
शुद्धिलिंगमिदं प्रोक्तं वृद्धिलिंगमिदं परम् ॥७८॥

हे देवि ! वर्फ से बना हुआ यह रसलिंग सिद्धि-बुद्धि-शुद्धि और वृद्धि के देने हारा है ॥ ७८ ॥

इदं पुंसवनं लिंगं महातेजोऽभिवर्धनम् ॥
कन्याप्रदं पावनञ्च परमं योगदं कलौ ॥७९॥

यह रसमय वर्फ का लिंग बड़े तेज के बढ़ाने वाला है । कलियुग में पुत्र-कन्या-तथा उत्तम योग के देने वाला और पवित्र करने वाला है ॥७९॥

बिना ध्यानं बिना दानं बिना योगं यदीच्छसि।
तदाश्रयस्व देवेशि ! लिंगं ह्यमरसंज्ञकम् ॥८०॥

हे देवेशि ! यदि तुम ध्यान दान तथा योग के बिना अमरपद की इच्छा रखती हो तो तुम्हें उचित है कि अमर संज्ञक देव के लिंग शरीर की शरण लो ॥ ८० ॥

शरीरं यौवनं द्रव्यं दारान् पुत्रान् गृहं तथा ॥
चञ्चलं सर्वतो ज्ञात्वा ह्यमरेशं समाश्रयेत् ॥८१॥

शरीर यौवन धन पदार्थ स्त्रियें पुत्र और गृह इन सब वस्तुओं को क्षणभङ्गुर (अनित्य) समझ कर पुरुष अमरेश की शरण को प्राप्त होवे।।८१।

यावन्न ग्रसते मृत्युर्यावन्नेन्द्रियविप्लवः ॥
यावद् देहे जरा व्याधिर्नास्त्येव जगदम्बिके!॥८२॥
तावदेवामरेशाख्यं लिंगं रसमयं प्रिये ? ॥
पूजयित्वा नरो देवि? मुच्यते व्याधिसंकटात्।८३

हे जगदीश्वरि ! जब तक जीव मृत्यु के मुख में नहीं पड़ा और जब तक इन्द्रिय व्याकुलता को प्राप्त नहीं हुए तथा जबतक शरीर में जरा और व्याधि

(रोगं) प्रविष्ट नहीं हुए तब तक हे प्रिये जीवमात्र रस स्वरूप अमरेश भगवान् का पूजन कर संकटों से बच सकता है ॥ ८३ ॥

त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि स्थानानि जगदम्बिके! ॥
अमरेशाख्यलिङ्गस्य कलांनार्हन्ति षोडशीम् ८४

हे जगन्मातः! त्रैलोक्य के जो पवित्र तीर्थ अथवा स्थान हैं वह अमरेश भगवान् की पूजा से प्राप्त हुए पुण्य की सोलहवीं कला को भी नहीं प्राप्त होते ॥ ८४ ॥

अमरेशसमंलिङ्गं दिव्यं भूम्यान्तरिक्षिकम् ॥
महापापहरंदेवि ! सद्यः कल्मषनाशनम् ॥८५॥

हे देवि ! प्रकाश स्वरूप सर्व व्यापक श्रीअमरनाथजी का यह जो महादेव जी के समान लिङ्ग शरीर है। जो भूमि आकाश और द्युलोक में रहने वाला है वह शीघ्र पापों के विनाश करने हारा है ॥ ८५ ॥

भूयोभूयः किमुक्तेन नरः पातकवान् कलौ ॥
अमरेशंसमाश्रित्य मुक्त एव न संशयः ॥८६॥

हे देवि ! बारम्बार कथन करने से क्या प्रयोजन है कालियुग में पातकी पुरुष अमरेश का पूजन कर सद्योमुक्ति को प्राप्त हो जाता है इस में कोई संदेह नहीं ॥ ८६ ॥

इत्थंमाहत्म्यमीशानि! पुण्यंह्यमरनाथजम् ॥
श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत ब्रह्महत्यादिकोटिभिः ८७

हे महेशानि ! इस प्रकार श्रीअमरनाथजी का पवित्र महात्म्य श्रवण कर पुरुष अनेकानेक ब्रह्म हत्यादि पापों से छूट जाता है ॥ ८७ ॥

अपेयपानान्मुच्येत तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणात् ॥

बन्धनान्मुच्यते बद्धो रोगाद्रोगी प्रमुच्यते ॥८

हे देवि ! इस महात्म्य के श्रवण करने से अपेय ( मद्यादि पान करने से तथा अभक्ष्य मांसादि भक्षण से जो पाप होता है उस तथा ( कैदी ) बन्धन (कैद) से और रोगी रोगसे छूट जाता है ॥ ८८

अयंतु पटलः सौम्यः शत्रूणांपुष्टिनाशनः ॥
पठित्वा पाठयित्वा वा मुच्यते सर्वकिल्विषात् ८६

॥ यह सौम्य अर्थात् शांति देने वाला पटल शत्रुओं की पुष्टि ( बल के नाश करने द्वारा है ॥ इस के पठन पाठन से पुरुष सब पापों से रहि होसकता है ॥ ८६ ॥

आयुःप्रदं कान्तिदञ्च कीर्तिदं जगदीश्वरि ?
धनदम्पुत्रदश्चापि कन्याप्रदमनुत्तमम् ॥९०॥

॥ हे जगत की स्वामिनि ! यह पटल आयु कान्ति ( सुन्दरता ) यश धन तथा सब से उत्तम पुत्र और कन्यारत्न का देने वाला है ॥ ९० ॥

इत्येष पटलोगुह्योगोपनीयः कलौ प्रिये ॥
श्रुतः समनुध्यातश्च महापातकहा कलौ ॥९१॥

हे प्रिये ! यह गुह्य पटल कलियुग में गोपनीय है इस के श्रवण तथा मनन करने से पुरुष महा पापों से रहित होसकता है ॥ ९१ ॥

दशमः पटलः सम्पूर्णः ॥

इतिश्री अमरनाथ यात्रा के महात्म्य वर्णन में कपोतपटल नाम अमरचन्द्रिका टीका का दशवां पटल सम्पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

## एकादशः पटलः

श्रुत्वा श्रुत्वा महेशान ! सारात्सारमनुत्तमम् ॥
पुण्यंह्यमरनाथस्य रसलिङ्गस्य सम्भवम् ॥१॥
कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि कृतार्थाऽस्मि न संशयः।
क्रीतास्मि देवदेवेश ! तारितास्मिभवार्णवात् ॥२॥

हे महेशान ! श्रीअमरनाथजी के दर्शन करने से उत्पन्न हुए पवित्र से पवित्र पुण्य का श्रवण कर मैं सब तरह से कृतार्थ होगई हूं अर्थात् मेरा जन्म सफल हो गया है हे देवन के देव ! इस में कुछ भी सन्देह नहीं कि आप ने मेरा जन्म मूल्य ले लिया है ( खरीद लिया है ) ॥ और मुझ को संसार सागर से पार कर दिया है ॥ १--२ ॥

जय शम्भो त्रिनेत्रेश ! जय भक्तकृपाम्बुधे ! ॥
जय देव जयेशान ! त्रिपुरासुरसूदन ! ॥३॥

हे त्रिनेत्र ! कल्याण कारिन् प्रभो ! आपकी जय हो भक्तों के लिए कृपा के समुन्द्र प्रभो ! आप की जय हो। हे त्रिपुर दैत्य का नाश करने हारे ईशान ! आपकी बारम्बार जय हो ॥ ३ ॥

जय कपर्दिन्देवेश ! जय शूलधराच्युत ! ॥
पिनाकपाणे हे शम्भो ! जयान्धक विमर्दन ॥४॥

हे कपर्दिन् ! देवो के देव ! आपकी जय हो ॥ हे शूलधारिन् तीन कालों में एक रस रहने हारे आपकी जय हो। हे अन्धक नाम दैत्य के नाशक तथा पिनाक को धारण करने हारे आपकी जय हो ॥ ४ ॥

जय भक्तजनोद्दामकामनावरदेश्वर ! ॥
जय भक्तिरसास्वादस्वादिताखिलविश्वप ! ॥५॥

भक्त जनों की उत्कट कामना के वश से वर प्रदान करने वाले भक्ति रस के आस्वादन में जाने हुए रस वाले हे सबके पालन करने वाले स्वामी आपकी जयहो ॥ ५ ॥

जय घोरातिघोरेश ! जय पापनिकृन्तन !
जय भैरव भीमेश ! जय श्रीपरभैरव ! ॥६॥

सबसे अधिक भयानकों के स्वामिन् ! पापों के विनाश करने वाले हे भैरव ! भीमेश तथा हे परम भैरव आपकी जय हो ॥ ६ ॥

माहात्म्यंह्यमरेशस्य श्रुतंत्वन्मुखपङ्कजात् ॥
पुनर्वद महादेव ! पुण्यं ह्यमरनाथजम् ॥७॥

हे महादेवजी ! आपके मुख कमल से श्रीअमरनाथजी की यात्रा का माहात्म्य मैंने श्रवण किया है अब आप महादेवजी के दर्शन से जो पुण्य होता है वह कथन करें ॥ ७ ॥

कस्मिन् काले कृता यात्रा महाफलप्रदा भवेत् ॥
दर्शनात्स्पर्शनाद्वापि पूजनादपि सुन्दर ! ॥८॥
श्राद्धाच्च ह्यमरावत्याः पञ्चनद्याश्च सङ्गमे ॥
दानात्किं फलमाप्नोति नरः पातकवान्कलौ ॥
विशेषतश्च किंप्रोक्तं दानमत्युत्तमं प्रिय !
यत्कृत्वा मुच्यते तत्र नरः पातककोटिभिः ॥१०॥

भैरवी जी बोल कि हे प्रभो ! किस समय यात्रा की हुई महाफल दायक होती है ॥ अमरावती और पञ्चनदी के संगम में श्रद्धा से महादेवजी के दर्शन-स्पर्शन-पूजन और दान करने से तथा श्राद्ध करने से क्या फल प्राप्त होता

है। और हे सौन्दर्य युक्त प्रभो! कलियुग में पातकी पुरुष विशेष किस वस्तु का दान करे! जिस के करने से वह करोड़ों पापों से रहित होजावे ८-१०

श्री भैरव उवाच ॥

साधुपृष्टंत्वया देवि ! यतोभक्तिस्तवानघे !
पुण्यंवा मरेशाख्ये तीर्थे परमपावने ॥११॥

श्री भैरव जी उत्तर देते हैं।

हे देवि तुम ने पुराय (पवित्र) प्रश्न किया है जिस प्रश्न से तुम्हारी निष्पाप परम पवित्र अमरेश तीर्थ में पवित्र भक्ति प्रतीत होती है ॥ ११ ॥

यतः स्वं दर्शयामास-श्रावण्यां च हरः स्वयम् ॥
ततश्च कथितायात्रा श्रावण्यां पुण्यदायिनी ॥१२

हे भगवति ! जिस कारण भगवान् महादेवजी ने अपना स्वरूप श्रावणी ( रक्षा पूर्णिमा ) में प्रकाशित किया है इस कारण श्रावणी पर यात्रा करनी परम पुराय देने वाली कही है ॥ १२ ॥

श्रावणे शुक्लपक्षे तु यात्रांकृत्वा विधानतः ॥
फलंह्यमरनाथस्य नरोयात्यविनश्वरम् ॥१३॥

हे भगवति ! श्रावण के शुक्ल पक्षमें पुरुष विधिपूर्वक यात्रा करके अमरनाथ जी के दर्शन से सदैव काल में रहने वाले फल को प्राप्त होता है।

यः प्रपश्येत्पूर्णिमायांसुधालिङ्गंसनातनम् ॥
याति शैवंपदंसोऽपि पशुपाशविवर्जितः ॥१४॥

जो पुरुष श्रावण की पूर्णिमासी को सनातन भगवान् महादेवजी का दर्शन करता है वह पाशबन्धन ( रस्से ) से रहित पशु की तरह जन्म

बन्धन से रहित हुआ कल्याण को देने वाले शिवधाम को प्राप्त होता है ।। क्योंकि भगवद् गीता में भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी लिखते हैं (क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे) अर्थात् भगवान् के दर्शन से पुरुष कर्मबन्धन से रहित हो जाता है ।। १४ ।।

यः श्रावण्यां महादेवि ? प्रपश्येद्गिरिमध्यगम् ॥
लिङ्गंह्यमरनाथाख्यं स गच्छेच्छिवसन्निधौ ॥१५

हे देवि ? जो पुरुष श्रावणकी पूर्णमासी को पर्वतकी गुफा में श्री अमरनाथजी के लिङ्गशरीर का दर्शन करता है वह शिव समीपता [नजदीकी] को प्राप्त होजाता है ॥१५॥

स्पर्शनाद्देवदेवस्य लिङ्गस्य जगदीश्वरि ? ॥
पापकञ्चुकनिर्मुक्तो याति शैवं परं पदम् ॥१६॥

हे जगदीश्वरि ? उस दिन में श्रीमहादेवजी के लिङ्ग शरीर के दर्शन से प्राणिमात्र पापरूप कुञ्चुक से रहित होकर शिवधाम ( लोक ) को प्राप्त होता है ।। १६ ।।

वाराणस्यादशगुणंप्रयागाच्च शतं स्मृतम् ॥
सहस्रगुणितं देवि ? नैमिषात्कुरुजाङ्गलात् ॥१७
तत्पुण्यफलदंप्रोक्तं मया तव प्रियेच्छया ॥
दिव्यंवर्षसहस्रन्तु लिङ्गार्बुदपूजनम् ॥१८॥
सुवर्णपुष्पैः मुक्ताभिः क्षौमैर्वरपटैस्तुयत् ॥
तत्फलं समवाप्नोति रसलिङ्गस्य पूजनात् ॥१९॥

हे देवि ? काशी में लिङ्ग शरीर के दर्शन तथा पूजन से दश गुणा तथा प्रयाग से सौगुणा और नैमिषारण्य तथा कुरु जांगल में पूजा से

हजार गुणा अधिक पुण्य फल के देनेवाला अमरनाथजी का पूजन मैने तेरे हित के कारण कहा है ॥ और देवताओं के हजार वर्ष तक सुवर्ण पुष्प मोती तथा पट्ट वस्त्रों से अर्बुदालिङ्ग की पूजा के करने से जो फल प्राप्त होता है वह फल श्रीअमरनाथजी की रसलिङ्ग पूजा से एक दिन में ही प्राप्त होजाता है ॥१७-१८-१९॥

एकाहेन महादेवि ! मृगकर्पूरचन्दनैः ॥
कुङ्कुमैश्चन्दनैश्चापि पूजयेदमरेश्वरम् ॥२०॥

कस्तूरी, कपूर, चन्दन, केसर से जो प्राणी महादेवजी का पूजन करता है वह महापुण्य को प्राप्त है ॥२०॥

आप्नोति च महापुण्यंह्यमरेशस्य पूजनात् ॥
मुक्ताभिः स्वर्णपुष्पैश्च रौप्यैर्वा सुरसुन्दरि ॥२१॥

हे सुर सुन्दरि ! मोती, सुवर्ण, पुष्प तथा चन्दी क फूलों से जो रसलिङ्गकी पूजा करता है वह मुक्ति को प्राप्त होता है ॥२१॥

नरोमुक्तिमवाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने ? ॥
अन्यैश्च विविधैर्द्रव्यैः पूजयेद्योऽमरेश्वरम् ॥२२॥
धूपदीपैश्च नैवेद्यैः पुण्यमाप्नोति यागजम् ।
आरात्रिकांमहेशस्य घृताऽभ्यक्तांकरोतियः ॥२३
तिलतैलाभिषिक्तां वा स याति परमं पदम् ।
घृतगुग्गुलुसंयुक्तांयोधूपयति सुन्दरि ! ॥२४॥

हे देवि ? धूप-दीप और नैवेद्य से तथा और अनेक प्रकार की सामग्री से जो पुरुष श्रीअमरनाथजी की पूजा करे वह यज्ञ कृत फल को

प्राप्त होता है । जो पुरुष महादेवजी की घृत युक्त बत्तियों से अथवा तैल युक्त बत्तियों से आरति करता है वह भी उत्तम पद (ईश्वर का स्थान) को प्राप्त होता है और हे सुन्दरि ! जो पुरुष पूर्वोक्त आरति के साथ घृत और गुगुल भी धुखाता है वह भी पाप से रहित होकर शिव लोक को प्राप्त होता है ॥ २२—२४ ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तो याति माहेश्वरंपदम् ।
प्रदक्षिणार्धं देवेशि ! योविदध्यान्महेश्वरे ॥२५॥
पदे पदेऽश्वमेधानां सहस्रंप्राप्नुयान्नरः ।
योदण्डवच्च प्रणमेद्भूमौ देव्यमरेश्वरम् ॥२६॥
तं ब्रह्मा च हरिश्चापि नमतो हीति संस्थितिः ॥
यद्यत्करोति तत्रस्थः पुण्यंह्यमरसन्निधौ ॥
तत्तदक्षय्यतां याति सत्यमेव न संशयः ॥२७॥

और जो पुरुष 'तद्रूप होकर' महेश्वरजी की अर्ध परिक्रमा करता है वह पुरुष पद पद में हज़ारों अश्वमेघयज्ञों के फल को प्राप्त होता है। हे देवि ? जो पुरुष ( द्वन्द्वातीत हुआ ) अमरेश्वर को दण्डवत् प्रणाम करता है वह ब्रह्मा और विष्णु से भी मानने के योग्य हो जाता है यह शास्त्रोक्त मर्य्यादा है । क्योंकि जो द्वद्वातीत है वह पाप से लिपटा नहीं होता और ब्रह्मा विष्णु माया युक्त सगुण ब्रह्म को कहते हैं । मनुष्य श्रीअमरनाथजी के समीप जो २ पुण्य करता है वे अक्षय फल को पाता है इस में संदेह नहीं यह अटल सिद्धान्त है ॥ २६—२७ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन भूयो भूयो वरानने !
मानुष्यं दुर्लभं ज्ञात्वा देहंज्ञात्वा जराकुलम् ॥२८

हे श्रेष्ठ मुख वाली ? बारम्बार कहने से क्या प्रयोजन है पुरुष मनुष्य जन्म को दुर्लभ समझ कर देह को बुढ़ापे में घबराने वाला ॥२८॥

सर्वं च चञ्चलं ज्ञात्वा श्रयेद्द्ध्यमरेश्वरम् ।
ततोऽवारुह्य शैलात्तु श्रयेत्संगममनुत्तमम् ॥२९॥
श्राद्धंकृत्वा विधानेन तर्पयेत्पितृदेवताः ।
मोदन्ते पितरस्तस्य नृत्यन्ति च समन्ततः ।३०

तथा संसार की सब वस्तुओं को अस्थिर यानी नाशवान् समझ कर प्राणिमात्र को अमरेश्वर भगवान की शरण में प्राप्त होना चाहिए ॥२९ इस प्रकार दर्शन स्पर्शन करके पुरुष (अ तरङ्गिणी) के उत्तर सङ्गम में आकर प्राप्त होवे वहां विधि पूर्वक श्राद्ध करके पितृ देवताओं को तृप्त करे उसके पितर और देव सब तरह नृत्यकारी को करते हुए हर्षयुक्त (खुश) होते हैं ॥२९-३०॥

अथ कुर्वन्ति दायदाः संगमे श्राद्धमुतमम् ।
गयापिंडप्रदानैश्च शतकल्पं सुरेश्वरि ? ॥३१॥
यां गतिं पितरो यान्ति तामाप्नोति नरोऽत्रैव ।
क्षीरखण्डादिभोज्यैश्च ब्राह्मणानांचभोजनात्३२
तामाप्नोति नरोदेवि ? सक्तुपिण्डैश्च संगमे ।
कुरुक्षेत्रे प्रयागे च मकरेऽपि दिवाकरे ॥ ३३ ॥
शतकल्पं महेशानि ? स्नानाद्यत्फलमाप्नुयात् ।
तदाप्रोति नरोऽत्रैव स्नानमात्रेणचेश्वरि ! ॥३४॥

इस सङ्गम में जो यात्री श्रद्धा युक्त होकर पितरों का श्राद्ध करते हैं, हे देवताओं की ईश्वरि ! जो गति गया में सौकल्प पर्यन्त पिण्डदान से प्राप्त होती है उसी गति को पुरुष यहां पा लेता है । हे देवि ? ब्राह्मणों को क्षीर खण्डादि उत्तम पदार्थों के भोजन कराने से पुरुष जिस गति को पाते हैं उसी को यहां सक्तु भोजन कराने से प्राप्त होता है । हे महेशानि ! माघ के महीने में कुरुक्षेत्र तथा प्रयाग में सौ कल्प पर्यन्त स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है । वह यहां स्नान से ही प्राप्त हो जाता है ॥ ३१-३२-३३-३४ ॥

चूड़ामणौ महायोगे कुरुक्षेत्रे च तर्पणात् ।
यांतृप्तिं पितरो यान्ति तांयान्तिसंगमे प्रिये ? ३५

चूड़ामणि क्षेत्र में महायज्ञ करने से तथा कुरुक्षेत्र में तर्पण करने से पितर जिस तृप्ति को प्राप्त होते हैं वह ही तृप्ति संगम में प्राप्त होती है ।

अमरावती पञ्चनद्याः सङ्गमे सुरपूजिते !
नारीवा पुरुषो वापि यः कुर्याच्छ्राद्धमुत्तमम् ३६
पितरस्तस्य नृत्यन्ति शतकल्पं न संशयः ॥
गोहिरण्यं सुवासांसि क्षौमं रौप्य मपीश्वरि ॥३७

हे देवताओं से पूजने योग्य भैरवि ? स्त्री अथवा पुरुष जो अमरावती पञ्चनदी के सङ्गम में उत्तम श्राद्ध करे उसके पितर शतकल्प पयर्न्त तृप्ति को प्राप्त होते हैं । यह निश्चित बात है ॥ ३६-३७ ॥

मुक्ताफलं मणिं वापि दत्वा यान्ति सदा शिवम्
पीठं विशेषतो दत्वाऽमरेशस्य सुप्रीतये ॥३८॥

गौ-सुवर्ण-रेशमी और दूसरे सुन्दर वस्त्र चान्दी-मोती मणियों का दानकर जो उत्तम सत्पात्र के प्रति देता है वह सदा शिवधाम को प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

नरोमुक्तिमवाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने ? ॥३९॥

हे उत्तम मुख वाली भैरवि ? श्री अमरनाथ जी की प्रीति के लिए विशेष करके जो पीठ (चौकी) दान करता है वह नर निःसंदेह मोक्ष दशा को प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥

श्री भैरव्युवाच ।

किं विधं पीठदानंहि शिवार्थंभगवँस्त्वया ॥
कथितं तन्महेशान ! वद मे हितकाम्यया ॥४०॥

इसको सुनकर श्री भैरवी जी बोले कि हे भगवन ! आपने अमरनाथ जी को अर्पण करने योग्य पीठ के दान की क्या विधि कही है हे महेश जी ! मेरे हित की इच्छा रखते हुए आप मेरे प्रति इस विधि को ठीक २ खोलकर कथन करो ॥ ४० ॥

श्री भैरव उवाच ।

पलपञ्चकमादाय यवपिष्टस्य सुन्दरि ! ॥
चतुर्भद्रं ततः कृत्वा लेपयित्वा च कुंकुमैः ॥४१॥
कर्पूरचन्दनैर्वाऽपि मृगजैश्च महेश्वरि ? ॥
चतुष्कोणेषु संस्थाप्य सुवर्णानां चतुष्टयम् ॥४२॥
मध्ये समुक्तं सौवर्णं स्थापयित्वा सुरोतमे ? ॥
अथवा रौप्य मुद्राणां पञ्चकं मनुजेश्वरि? ॥४३॥

यह भैरवी का वचन सुनकर श्री भैरवजी बोले । हे सुन्दर गुण युक्ते पीठदान करने की इच्छा वाला पुरुष यवों (जौ) का आटा ४ पाव भर लेकर उसकी चार कोण वाली चौकी बनावे । हे महेश्वरि ! कुंकुम (केसर) कपूर-चन्दन तथा कस्तूरी से लेप करे । हे सुरसत्तमे ! उसकी चारों कोणों पर सुवर्ण के चारखण्ड रक्खे और हे मनुष्यों की स्वामिनि ! उसके मध्य में सुवर्ण युक्त मोती स्थापन करे अथवा पाञ्च रुपये स्थापन करे, अर्थात् रख देवे ॥ ४३ ॥

निष्काणामपि देवेशि स्थापयित्वा सुरेश्वरि ?
अर्चयित्वा गन्धपुष्पैः ब्राह्मणाय समर्पयेत् ॥४४॥

हे सुरेश्वरि ! अथवा उस पीठपर मोहरों को स्थापन कर गन्ध पुष्पों से पूजन कर ब्राह्मण को समर्पण करे ॥ ४४ ॥

मंत्रैराधारशक्त्याद्यैः पूजयित्वा सुवासयेत् ॥
वस्त्रैः श्वेतपटैर्दिव्यैस्तथा यज्ञोपवीतकैः ॥४५॥
दक्षिणाभिर्भक्तिपूर्वं मन्त्रमेनं समुच्चरेत् ॥
यात्रासाफल्यहेतोश्च ह्यमरेशस्य चाज्ञया ॥४६॥
पीठं मयार्चितं दिव्यं सुवासोभिरलंकृतम् ॥
मृत्युंजय ? महादेव ! भिया संसारसागरात् ॥४७॥
अर्पित स्त्वत्स्वरूपाय ब्राह्मणाय महात्मने ॥
इदंगृहाण विप्रेश ? सरूपीभवशासनात् ॥४८॥
पीठं ह्यमरनाथस्य महापापाऽपनुत्तये ।
यन्मयादुष्कृतं किंचित् कृतं देवि गुरोरपि ॥४९॥

समर्पण करने के समय दिव्य श्वेत (सुन्दर सफेद) वस्त्रों और यज्ञोपवीतों से दक्षिणासहित इस पीठ की आधारशक्ति आदि मन्त्रों से पूजा करके इस मन्त्र को उच्चारण करे कि यात्रा के सफल करने के लिए अमरेश भगवान् की आज्ञा से वस्त्रों से अलंकृत यह दिव्यपीठ संसार सागर से उत्पन्न हुए भय से हे मृत्यु के जीतने हारे ! तथा हे देवों के देव ! भगवन् ! आपके समान रूपवाले महात्मा ब्राह्मण को अर्पण करता हूं ॥ यात्रा साफल्य···इस मंत्र (जो दो श्लोकों का है) को उच्चारण कर ब्राह्मण के प्रति प्रार्थना करे । इदं गृहाण···इत्यादि मन्त्र से हे विप्रों में श्रेष्ठ ! महादेवजी की आज्ञा से श्रीअमरनाथजी की प्रीति के लिए और अपने किए हुए महापापों और देवता और गुरुके किए हुए अपराधों की शांति के कारण इस पीठ को मैंने आपके प्रति अर्पण किया है आप इसे ग्रहण करें ॥ ४५-४

भ्रूणहत्यादिकं पापं ब्रह्महत्यादिकंतथा ॥
गुरुहत्यादिकंपापं मातृहत्यादिकं च यत् ॥५०॥

हे देवेशि ! उसी समय अमरनाथजी के आगे शुद्ध चित्त से प्रार्थना करे कि हे भगवन् ! जो मैंने पाप किया है तथा भ्रूणहत्या ब्रह्महत्यादि और गुरुहत्या तथा मातृहत्यादि पाप किए हैं ॥ ५० ॥

सुवर्णस्तेयादिकं यत्सुरापानमपीश्वरि ?
अनृतभाषणाज्जातं क्रोधलोभात्तथैव च ॥५१॥
परदाराभिगामित्वं परीवादं परस्य च ॥
लघु सूक्ष्मं वृहच्चापि यत्कृतंपापमुत्तमे ! ॥५२॥
तत्सर्वनाशमायाति पीठदानान्महेश्वरि !
इति मन्त्रेण देवेशि ! पीठं विप्राय चार्पयेत् ॥५३॥

इस प्रकार हे महेश्वरि ! जो सुवर्ण चुराना तथा मद्यपान करना आदि पाप किए और क्रोध लोभ से जो मैंने मिथ्याभाषण ( झूठ बोलना) रूप तथा पर स्त्री गमन रूप और परनिन्दा आदि जो छोटे बड़े पाप किए हैं हे उत्तम गुण युक्ते भैरवि ! वे सब पाप मेरे पीठदान करने से नाश को प्राप्त होवें ॥ हे देवेशि ! इस प्रकार इन २ । ३ मन्त्रों का उच्चारण कर विप्र के प्रति उस उत्तम पीठ को अर्पण करे ॥ ५१-५३ ॥

तथा मया प्रोक्तमिदं तवानघे ! दानंच पीठस्य परं रहस्यम्
दत्वा च देवेशि ! परैः किमन्यैर्दानैः कलौस्वल्प फलप्रदैः

श्रीभैरवजी बोले कि हे पापों से रहित भैरवि ! यह पीठदान परम रहस्य मैंने आपको कथन किया है ॥ हे देवेशि ! इस पीठदान की अपेक्षा (थोड़े) फलके देने वाले दानों से कलियुग में क्या सिद्धि होती है ? अर्थात् यह दान सब दानों से अधिक दान है ॥ ५४ ॥

इदं रहस्यं परमं नाख्येयं यस्य कस्यचित् ॥
गोपनीयं विशेषेण कलौ सिद्धि प्रदं नृणाम् ॥५५॥

भैरवजी बोले कि हे देवि ! यह पीठदान परमगोप्य है । यह ऐसे वैसे पुरुषों के प्रति नहीं कथन करना चाहिये । क्योंकि यह दान कलियुग में पुरुषों को सिद्धि देने वाला है ॥ ५५ ॥

लक्ष्म्या कृतमिदं दानं पार्वत्या च महेश्वरि ! ॥
सायुज्यमपितत्स्थाने प्राप्नुतः परमेश्वरि ! ॥५६॥

इस दान को लक्ष्मी और पार्वती ने किया है । हे परमेश्वरि ! वह दोनों इसी से विष्णु और शिवके साथ सायुज्य को प्राप्त हुई हैं ॥ ५६ ॥

ततोयायान्महाग्रामे मामलाख्ये महेश्वरि ! ॥
महागणपतिं तत्र पूजयेद् बलिभिः प्रिये ! ॥५७॥

हे महेश्वरि ! इसके अनन्तर यात्री पुरुष मामलारुष महाग्राम में जाए और वहां बलिदान से गणपतिजी की पूजा करें ॥ ५७ ॥

विविधैर्गन्धधूपैश्च मोदकाद्यैर्महेश्वरि ! ॥
दीपोपहारबालिभिः पुष्पैः पूज्यः प्रयत्नतः ॥५८॥
प्रसाद्य गणपं तत्र नाना ह्युपहारकैः ॥
यायान्नवदलां गङ्गां यष्टिं तत्रार्पयेद्बुधः ॥५९॥

हे महेश्वरि ! अनेक प्रकार के गन्ध पुष्प धूप दीप मोदक आदि उपहारों (भेटाओं) से गणपतिजी को प्रसन्न कर बुद्धिमान् पुरुष नवधारात्मक अर्थात नव प्रवाहों से बहने वाली गङ्गा के तट पर जावे और वहां चतुर पुरुष यष्टि का परित्याग करे ॥ ५८--५९ ॥

यष्टे ! ह्याधारभूतासि साक्षिभूताऽसि वै यतः ॥
मत्कर्मणश्च तीर्थस्य यात्रां मम निवेदय ॥६०॥

यष्टि (छड़ी) के परित्याग के समय इस प्रकार प्रार्थना करे कि हे यष्टि ! आप मेरी यात्रा का आधार हैं अर्थात तेरे सहारे मैंने यात्रा की ॥ और तू मेरे कर्मों की साक्षिणी है मेरी इस तीर्थ यात्रा को भगवान् के प्रति अर्पण करो ॥ ६० ॥

त्वं यष्टे सृष्टिरूपाऽसि स्थिति प्रलयकारिणी ॥
यष्टे ! विष्णुप्रियाऽसि त्वं शिवशक्तिस्वरूपिणी ।
तस्मान्मे पापसंघांश्च हित्वा याहि स्वकं पदम् ॥
गङ्गे ! प्रियासि देवस्य शिरसि धूर्जटेः स्थिता ॥६२

हे यष्टि तू सृष्टि की उत्पत्ति-स्थिति और प्रलय का कारण है विष्णु की प्यारी और शिवशक्ति स्वरूप हैं इस लिए मेरे पापों को दूर

कर अपने स्थान को प्राप्त हो। इसके अनन्तर गङ्गा भगवति की प्रार्थना करे। हे भगवति! गङ्गे! तू महादेव की प्यारी है इसी कारण उसके शिर पर स्थित है ॥ ६१--६२ ॥

पुरस्त्वं हि देवदेवस्य यात्रां मम निवेदय ॥
इति मन्त्रेण देवेशि! यष्टिं गङ्गाम्भसि क्षिपेत् ॥६३

मेरी यात्रा देयष्टि पहिले महादेव को अर्पण करो कि इस यात्रा को सफल करने के लिये स्वीकार करें। हे देवेशि! इस मन्त्र को उच्चारण (कह) कर यष्टि को गङ्गाजल में विसर्जन करे ॥ ६३ ॥

स्नात्वा पातालगङ्गायां ततोयायात्स्वकं गृहम् ॥
एवं कृत्वा तु देवेशि! नारी वा पुरुषोऽपिवा ॥६४॥
वेदपारायणं पुण्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥
यात्रामेवं विधां कृत्वा पुण्याममरनाथजाम् ॥६५॥
मुक्तिमेवं समाप्नोति विनाचेन्द्रियनिग्रहैः ॥
विना ध्यानैर्विना दानैर्विनायज्ञैर्महेश्वरि! ॥६६॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा ह्यन्ते सायुज्यमाप्नुयात् ॥
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ॥६७॥

अनन्तर पातालगङ्गा में स्नान कर अपने गृह को जावे हे देवेशि इस प्रकार यात्रा करके पुरुष अथवा स्त्री वेदपारायण यानी वेदपाठ के फल को निस्सन्देह प्राप्त होते हैं। इस प्रकार श्रीअमरनाथजी की यात्रा से प्राणिमात्र इन्द्रियों के निग्रह (विषयों से रोकने) के बिना ही मुक्ति फल को प्राप्त होते हैं। हे महेश्वरि! विधि पूर्वक यात्रा करने हारा यात्री ध्यान-दान-तथा यज्ञ

करने के बिना ही इस लोक में सुख भोगकर अन्त में सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होता है। इसका भाव यह है कि इस यात्रा में घर से चलने से लेकर सदा (हर वक्त) महादेवजी का ही ध्यान लगा रहता है कि कब दर्शन हों और विशेष करके मटन से आगे चलते समय चित्तवृत्ति बहुत ही एकतान हो जाती है शायद दर्शन हों या रास्ते में ही हिमपातादि१ओं से मर ही न जायं। इसलिए अधिक फल लिखा है वृत्ति की एकता होनेसे ही सब कार्य सिद्ध होते हैं इसी वास्ते जप-तप-नियम-यज्ञ-समाध्यादि किये हुए यहां सिद्ध होते हैं। यह महापापों का नाश करने हारा गुह्य ( गुप्त ) पटल है। इसके श्रवण करने से पुरुष क्रोड़ों पापों से रहित हो जाता है ॥ ६४--६७ ॥

इत्येष पटलो गुह्यो महापातकनाशनः ॥
श्रुतश्च पठितश्चापि हयमेधफलप्रदः ॥६८॥

बड़े २ पापों के नाश करने वाला यह गुह्य (गुप्त रहस्य) पटल श्रवण तथा पठन किया हुआ अश्वमेधके फलको देता है ॥६८॥

ग्रन्थोऽयं पूर्णतां वेदहयाङ्केन्दुमिते मया ।
वर्षे दशम्यां व्याख्यातो नीतो ज्यैष्ठे सिते दले ॥ १ ॥
शास्त्री रामप्रपन्नो विष्णुधरामश्च कृष्णजः ।
परमायासतो मेऽत्र साहाय्यं कुरुतः स्म तत् ॥ २ ॥
सरस्वतीगिरिः सोऽहं कृतज्ञः कृतिनोस्तयोः ।
समर्पये कराब्जे च शम्भोर्ग्रन्थमिमं मुदा ॥ ३ ॥

इति श्रीभृङ्गीश संहितायां भैरवभैरवीसंवादे दक्षिणपार्श्वोपतीर्थसंग्रहे श्रीमदमरनाथयात्राफलवर्णनं नाम एकादशः पटलः पूर्णतामितः ॥

इसके पढ़ने मात्र से लब्ध होत शिवधाम ।
शिवपदपङ्कजभ्रमर सदा विनय करत है राम ॥१॥
सब देवों के देव को इष्ट देव निज जान ।
अनन्तदेव पालित सदा करता हूं परणाम ॥२॥

---

१ बर्फ पड़ने आदि से।

इति श्रीभृङ्गीशसंहिता में भैरव-भैरवी संवादात्मक श्री अमरनाथ यात्रा माहात्म्य का (प्रभाकर पं० रामप्रपन्नशास्त्री काव्यतीर्थ साधारणदर्शनविशारद जी तथा भार्गवगोत्रोद्भव पं० श्रीकृष्णात्मज पं० लब्धरामशास्त्री जी की सहायता से श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-जम्बू-कश्मीरराजकीय श्रीअमरनाथजीश्रीरण बीरेश्वराद्यनेकमठाधिष्ठाता (महान्त) परमविरक्त मुमुक्षु स्वामी श्री १०५ सरस्वतीगिरि संकलित "अमरचन्द्रिका" नामक भाषाटीका में अमरगङ्गास्नान सुधा( हिम )लिङ्गदर्शन पञ्चतरङ्गिणी-अमरगङ्गासंगमस्नानादिविधि माहात्म्य तथा पर्वतावरोहण (उत्तरना) मामल ग्राम में गणपति महात्म्य यष्टि (छड़ी) विसर्जन पर्यन्त वर्णन नाम एकादश पटल समाप्त हुवा ॥ और यह अमरकथा ग्रन्थ भी समाप्त हुवा ॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः !



# अशुद्धशुद्धि पत्रम् ।

| अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठ पं० | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठ पं० |
|---|---|---|---|---|---|
| कांक्षन् आजगाम | काङ्क्षन्नाजगाम | १–८ | कथायाः | कथायाम् | १२–१ |
| संन्यासियों | संन्यासियों | ,,–१८ | कथायाः | कथायाम् | १४–१ |
| चुमासा | चौमासा | ,,–१९ | लाक | लोक | १४–१८ |
| यागीश्वर | योगीश्वर | २–३ | पाटलः | पटलः | १५–१ |
| तारिणी | तारिणीं | ,,–१२ | गात | गति | १५–२ |
| शुभा | शुभां | ,,–२१ | दानं | दाने | ,,–१० |
| उत्तर | उत्तम | ३–३ | शास्त्र नुसार | शास्त्रानुसार | ,,–१५ |
| तत्रकोस्ति | तत्रैकोस्ति | ,,–६ | या | यां | ,,–१९ |
| प्राणिना | प्राणिनां | ,,–७ | जी | जी की | ,,–२० |
| मद्य | पद्य | ४–१४ | जिम्र | जिस | ,,–२१ |
| करत | करते | ५–६ | कथायाः | कथायाम् | १६–१ |
| ब्रह्म | ब्रह्म | ६–१५ | सहाती | से होती | ,,–८ |
| चित्त का | चित्त की | ७–४ | प्रथमाः पाटलाः | प्रथमः पटलः | १९–१ |
| यींष्ट | यष्टिं | ,,–२१ | नागानाश्रमे | नागाश्रमे | ,,–३ |
| राजा क | राजा के | ८–७ | स्नात्वाप | स्नात्वोप | ,,–८ |
| दरानामी | दशनामी | ,,–८ | मत्रं | मयं | ,,–१० |
| तधा | तथा | ,,–९ | जप्त्वा | जप्त्वा च | ,,–११ |
| वी | की | ,,–१० | पाटलाः | पटलः | २०–१ |
| भृंगी | भृङ्गी | ,,–२२ | स्थेल | स्थल | ,,–३ |
| यात्रि | यात्री | ९–२० | गंगा | गङ्गा | ,,–५ |
| कथायाः | कथायाम् | १०–१ | महारेदेव | महादेव | ,,–७ |
| निष्पा | निष्पाप | ,,–१२ | गंगा | गङ्गा | ,,–१३ |
| चोक | चौंक | ,,–१६ | तेषामुद्धरणा०... | ...मुद्धारणा० | ,,–२१ |
| छप | छत्र | ,,–१८ | तत्तार्थे | तत्तीर्थ | २१–१० |
| म्लेच्छ | म्लेच्छ | ,,–२१ | इनके | इसके | ,,–१७ |

| अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठ पं० | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठ |
|---|---|---|---|---|---|
| तथाश्वतर | तथाश्वतर | २१–२० | चिन्ह | चिन्ह से | ३०- |
| अश्वतर | अश्वतर | ,,–२२ | शोभायमन | शोभायमान | ,,- |
| गंगा | गङ्गा | ,,–२३ | सूर्यादिके | सूर्यादि | ,,- |
| पाटलाः | पटलः | २२–१ | घट | घट २ | ३१- |
| वालाखिल्य | वालखिल्य | ,,–३ | रचतं | रचते | ,,- |
| शक्त्यानुसार | शक्त्यनुसार | ,,–१४ | कभा | कभी | ,,- |
| मीम | भीम | ,,–१५ | भगवान | भगवान् | ३२- |
| गुहा | गुहां | २५–१४ | तेषा | तेषां | ३३- |
| तलिङ्ग्ं | तल्लिङ्गं | २६–४ | भगवान | भगवान् | ३४- |
| ऽन्तरं | ऽन्तरे | ,,–७ | अन्तर्ध्यान | अन्तर्धान | ,,- |
| शुद्धः | शुद्धं | ,,–१० | स्वंग | स्वर्ग | ३५- |
| ऽमृतेश्वरः | ऽमृतेश्वर | ,,–१० | महात्म्य | माहात्म्य | ३६- |
| लिङ्ग्ग | लिङ्ग्ं | ,,–११ | इल | इस | ,,- |
| तत्वस्वरू | तत्त्वस्वरूप | २७–५ | महात्म्यं | माहात्म्यं | ३७- |
| तत्वज्ञान | तत्त्वज्ञान | ,,–७ | विशष | विशेष | ,,- |
| परमत्म | परमात्म | ,,–७ | युक्तः | युतः | ३८- |
| हुइ | हुई | २८–११ | श्रीगणेंश | श्रीगणेश | ४०- |
| स्थन | स्थान | ,,–१२ | मामेंश्वर | मामेश्वर | ४१- |
| कराना | करना | ,,–१३ | अन्तर्ध्यान | अन्तर्धान | ,,- |
| महात्म्यं | माहात्म्यं | ,,–१६ | लभेत | लभेत् | ,,- |
| महात्म्य | माहात्म्य | ,,–२२ | राप | पाप | ,,- |
| प्रथमः | द्वितीयः | २९–१ | कुंड | कुण्ड | ,,- |
| महर्षियों | महर्षियों | ,,–२ | विघ्नों | विघ्नों को | ४२ |
| म र्षि | महर्षि | ,,–५ | भैरयु— | भैरव्यु— | ,, |
| वर्षो | वर्षों | ,,–६ | लम्बोदरीं | लम्बोदरीं | ,, |
| उक्तायो... | उत्थायो... | ,,–१४ | मरे | मेरे | ,, |
| शंख | शङ्ख | ,,–१६ | तदज्ञया | तदाज्ञया | ,, |
| ,, | ,, | ,,–२३ | महादूव | महादेव | ,, |

| अशुद्धम् | शुद्धम् | पृ० | पं० | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृ० | पं० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| विसी | किसी | ४३ | ४ | आ०न्द | आनन्द | ५ | १४ |
| उनका | उनका भी | ,, | ५ | आसुओं | आंसुओं | ,, | १४ |
| ता | तो | ,, | ८ | —द्धरि | —द्धरिः | ,, | १९ |
| ज्ञानलाप | ज्ञानालाप | ,, | १० | पात्र | मात्र | ५४ | ६ |
| दृष्टुकामः | द्रष्टुकामः | ,, | १३ | ६ | १ | ५५ | ६ |
| वाग्भाः | वाग्भिः | ४ | ८ | अयर | अमर | ५६ | १ |
| वरनं | करने | ,, | ९ | पुरुषा | पुरुषो | ,, | ७ |
| मुनियों | मुनियों | ,, | १६ | महायते | महीयते | ,, | ८ |
| पार्वती | पार्वती | ,, | २३ | जीने | जी का | ५७ | ७ |
| प्रकाशभान | प्रकाशमान | ४५ | ९ | विमल शीशा | निर्मल सीसा | ,, | १३ |
| आदितत्व | आदितत्त्व | ,, | १० | दख | देख | ,, | १६ |
| इस लिये | इसी लिये | ,, | १३ | गंगा | गङ्गा | ,, | १७ |
| वे | हे | ,, | १३ | ,, | ,, | ,, | २० |
| मेदकों | मोदकों | ४६ | ४ | ,, | ,, | ,, | २१ |
| वालं | वाले | ,, | ५ | ,, | ,, | ५८ | ४ |
| एंसे | ऐसे | ,, | २ | स्पश | स्पर्श | ,, | ४ |
| विकीर्णान्तं | विकीर्णन्तं | ,, | ९ | वालाहं | वाला है | ,, | २२ |
| तत्वं | तत्त्वं | ,, | १० | गङ्गा कं | गङ्गा के | ,, | २२ |
| गुणयापि | गुणायापि | ,, | १२ | गंगा | गङ्गा | ५९ | ६ |
| होन | होने | ,, | १८ | ,, | ,, | ,, | १२ |
| हुई | हुई | ४७ | ५ | सवो | सेवा | ६० | १२ |
| सपुष्कला | सुपुष्कलाम् | ,, | ॱ० | ्प | उप | ६१ | १३ |
| खाकर | खाकर बड़ी भारी | ,, | २२ | करनं सं | करने से | ६२ | १० |
| प्रिय | प्रिये | ४८ | ८ | तपण | तर्पण | ,, | १८ |
| वा | का | ४९ | २ | महदेव | महादेव | ६३ | १८ |
| पगि | परि | ५१ | ११ | महंश्वरी | महेश्वरी | ६४ | ४ |
| मे ि | मेरी | ,, | २३ | लग | लगे | ,, | ४ |

| अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठे पं० | अशुद्धम् | शुद्धम् | पृष्ठे |
|---|---|---|---|---|---|
| चेटों | चोटों | ,, ११ | दृष्ठा | दृष्ट्वा | ७७- |
| वह हा | वह ही | ,, १८ | उटाया | उठाया | ,,- |
| पण्डितों नेपेष | पण्डितों ने पेष | ६९ ४ | युक्ता | युक्तो | ,,-१ |
| देवेताओ को | देवताओं को | ६९ १० | वर्जनम | वर्जनम् | ,,-२ |
| मैन | मैंने | ,, १४ | गाहत्या | गोहत्या | ,,-२ |
| भगवान | भगवान् | ७० ९ | पातकै | पातक | ७८-३ |
| वेद | वेदं | ,, १० | तृप्त | तृप्ति | ,,-१ |
| समीध | समाधि | ,, २२ | बास | वास | ७९- |
| कं | के | ७१ ४ | स्रान | स्नान | ,,-६ |
| याग | योग | ,, ४ | सूखा हुआ | सूख गया | ,,-१ |
| सर्प | सर्व | ,, १६ | विज्ञात | विज्ञान | ,,-२ |
| लक्ष्मीं | लक्ष्मी | ,, २१ | देवी | देवि | ,,-२ |
| नगा | नगों | ७२ २१ | कथायाम | कथायाम् | ८०-१ |
| सप्तम | सप्तमः | ७३--१ | हे देवी | हे देवि | ,,-४ |
| यांति | यान्ति | ,,--४ | दने | देने | ,,-९ |
| स | से | ,,--७ | मुनियो को | मुनियों को | ,,-१० |
| यस्मात्त् | यस्माद | ,,-१५ | राक्षसौघैश्च | राक्षसौघैश्च | ,,-१६ |
| स्नानाव | स्नानाद् | ,,-१८ | पार्वती जी ने | ०० | ,,-१८ |
| स्वध्याय | स्वाध्याय | ,,-२१ | जी ने | देवीजीने | ,,-२० |
| करनें | करने | ,,-२२ | पदेश्वर | परमेश्वर | ,,-२० |
| काम्प या | काम्यया | ७४-७ | हूङ्कार | हुङ्कार | ८१-३ |
| तुमनं | तुमने | ,,-९ | देवा ? | देवाः | ८१-७ |
| इसकी | शेषनाग की | ,,-१० | यस्माद्गतो | यस्माद्गता | ८५-४ |
| प्रभाव | स्वभाव | ,,-१० | व्रजन् | व्रजन् | ,,-५ |
| मंगल | मङ्गल | ७५-१३ | दृष्ठा | दृष्ट्वा | ,,-८ |
| सं | से | ,,-१५ | नगारा | नगारे | ,,-१५ |
| शांत | शान्त | ७६-८ | भैरवी | भेरवी | ,,-२२ |
| मुख | सुख | ७७—४ | | | |

अ, आ, इ, ई ए, ऐ इति षट् स्वराः, पञ्चदशो बिन्दुरूपः स्वरश्च प्रथमबीजेऽन्तर्भवन्ति । तथा उवर्णावर्णयोः गुणयोगादोकारो भवति । तस्य पुनरवर्णेन वृद्धियोगादौकारः । तथाचावशिष्टाः स्वरा उ, ऊ, ओ, औ इति चत्वारः षोडशस्वरात्मा विसर्गश्चान्त्यबीजेऽन्तर्भवन्ति । ऋ, ॠ इति स्वरौ रेफस्यैव रूपभेदौ ऌ, ॡ इति लकारस्य । प्रतिलोमोच्चारितो विसर्गो हकारः मध्यमबीजे ककारश्च । अत आद्यन्तार्णग्रहणे सन्दंशन्यायात् सर्वे हलो गृहीताः । सकारककाराभ्यां क्षकारश्चोपात्तः । एवं पञ्चाशद्वर्णमयी मातृका चात्रोद्धृता । मातृकोद्धरणे च सर्वमन्त्रयन्त्रतन्त्रवेदशास्त्रेतिहासपुराणकाव्यनाटकभाषाभेदगीतभेदस्तुतिभेदाः सूचिताः स्युः । सर्वस्यास्य तन्मयत्वात् । अत एवोक्तं — 'न मातृकापरो मन्त्रः' इति । एवं तृतीयबीजे सु, औ, जस्, इति प्रथमाविभक्तिरूपं लभ्यते । सा च प्रातिपदिकार्थमात्रनिष्ठेति द्वितीयाद्याः षड् विभक्तयोऽस्यामेवान्तर्भवन्ति । तत्तदवस्थाविशेषवतः प्रातिपदिकार्थस्यैव कर्मादिकारकतयावस्थितत्वात् । एवं सप्तविभक्तयोऽप्यस्यां त्रिपुरायामन्त्यबीजेनोद्धृताः । किञ्च पृथिव्यादिमायान्तानि यान्येकत्रिंशत्तत्त्वानि, तानीह सत्सदिति प्रतीतेः सर्वानुगतेन सकारेण गृहीतानि । औकारेण च शुद्धविद्यादिशिवान्तानि पञ्च तत्त्वानि गृहीतानि । तस्यानुत्तरानन्देच्छेशानोन्मेषोनताशक्तिसम्भवत्वात् स्वयं तदवयवित्वेन शक्तिविशेषत्वाच्च पञ्चशक्तिरूपत्वम् । ताश्चान्ततश्चिदानन्देच्छाज्ञानक्रियाशक्तय एव, याः शिवादिशुद्धविद्यान्तपञ्चतत्त्वात्मिका भवन्तीति । षट्त्रिंशत्तत्त्वानि चान्त्यबीजे विराजन्ते । यथोक्तं —

"यथा न्यग्रोधबीजस्थशक्तिरूपो महाद्रुमः ।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ॥"

इति । ऊर्ध्वाधो बिन्दुरूपेण विसर्गेण सर्वतत्त्वाविर्भावतिरोभावस्थानभूतं परमशिवपराभट्टारिकाख्यं प्रधानतत्त्वं च सङ्गृहीतमित्येषा दिक् । एवं त्रिभिः स्थानैः रूपैर्बीजैश्च पुरापरपर्यायैः पदैर्युक्तत्वात् त्रिपुरेति निरुक्तं भवति । एतच्च निर्वचनान्तरोपलक्षणम् । कथं, त्रिभ्यस्तेजोबन्नेभ्यः पुरा भावात् त्रिपुरा । 'सदेव सोम्येदमग्र आसीद्',

'एकमेवाद्वितीयं', 'तदैक्षत', 'तत्तेजोऽसृजत', 'तदपोऽसृजत', 'ता अन्नमसृजन्ते'ति श्रुतेः। तेजआदित्रिरूपत्वाद्वा कारणव्यतिरेकेण कार्याभावाद् 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं' 'एवं सोम्य! स आदेशः' इति श्रुतेश्च। तथा त्रिभ्यो लोकेभ्यः पुरा भावात् तद्रूपत्वाद्वा, एवं त्रिभ्यो वेदेभ्यः पुरा भावात् तत्रिरूपत्वाद्वा, त्रिभ्यो देवेभ्यः पुरा भावात् तद्रूपत्वाद्वा, त्रिभ्यः सूर्याग्नीन्दुभ्यः पुरा भावात् तद्रूपत्वाद्वा त्रिभ्यः प्रमात्रादिभ्यः पुरा भावाद् तद्रूपत्वाद्वा तिसृभ्यः शक्तिभ्यः पुरा भावात् तद्रूपत्वाद्वा इत्यादि। इह महामन्त्रः पुरा अस्या एव त्रिपुराख्या यतस्त्रीणि बीजानि पश्यन्तीमध्यमावैखरीरूपाणि। इह सर्वान्तरात्मनः परमेश्वरस्यानवच्छिन्नाहन्तापरामर्शमय्यनपायिनी चाद्या। द्वितीया देहादिपरिच्छिन्नाहन्तापरामर्शमयी। तृतीया देहादिमायाप्रमातृभ्योऽन्यत्र नीलसुखादौ स्वात्मन्येवेदन्तापरामर्शमयी। चतुर्थी तद्विस्तारमयीति भेदः। पुरैस्त्रिभिरित्यनुक्तिः पदैस्त्रिभिरित्युक्तिश्च श्रुतिप्रत्यभिज्ञापनार्था। 'चत्वारि वाक् परिमिता पदानी'त्यादिका श्रुतिरत्रानुसन्धेया। अत्र स्तुतौ त्रिपुराशब्दो देवतावाची। इतरत्र मन्त्रवाचीति द्रष्टव्यम्॥ १॥

एवं त्रिपुरामन्त्रदेवतातदुपासनास्थानफलानि सामान्येनोपदिश्याथ तद्विशेषोपदिदिक्षुः प्रथमं नादबिन्दुबीजभेदेन त्रिधा स्थितस्य प्रथमबीजस्य निष्कलसकलनिष्कलसकलभेदेन त्रिधावस्थितदैवतस्य माहात्म्यं द्वाभ्यां श्लोकाभ्यां कथयति —

**या मात्रा त्रपुसीलतातनुलसत्तन्तूत्थितिस्पर्धिनी**
**वाग्बीजे प्रथमे स्थिता तव सदा तां मन्महे ते वयम्।**
**शक्तिः कुण्डलिनीति विश्वजननव्यापारबद्धोद्यमां**
**ज्ञात्वेत्थं न पुनः स्पृशन्ति जननीगर्भेऽर्भकत्वं नराः॥ २॥**

या मात्रेति। अनयोराद्येन सनादस्य बिन्दोः सदैवतस्योपासनाफलमघच्छेद एवेति वर्णयति। यद्यप्यघच्छेदः पूर्वश्लोके त्रिपुरा-

१. 'ला' ग. पाठः.

चतुष्टयं च मूर्धनि श्रीगुरुपादुकान्ते वामदक्षिणमध्यसर्वोर्ध्वप्रदेशेषु द्वादशान्तस्थसहस्रदलपद्मकर्णिकायां स्मृत्वा विन्यस्याधारे गणेशं, हृदि सपरिवारां देवीं च मूलेन नत्वास्त्रमन्त्रेण करतलशुद्धितालत्रयदिग्बन्धनाग्निप्राकारान् विधाय नाभिहृद्भ्रूमध्येषु बालाबीजानि विन्यस्य हृदयं स्पृष्ट्वा तां चतुर्वारमावर्त्यान्ते श्रीत्रिपुरेश्वरि! आत्मानं रक्ष इत्यात्मरक्षां कृत्वा, रेचकादिक्रमेण त्रिषड्द्वादशाभ्यस्तं मूलबीजैः प्राणायामत्रयं कृत्वा समस्तव्यस्तमूलबीजैश्चतुर्वारं व्याप्य शक्त्यण्डमायाण्डप्रकृत्यण्डपृथ्व्यण्डमात्रपरमार्थं सामान्यकारणसूक्ष्मस्थूलशरीरचतुष्कमुत्पाद्यानुलोमविलोममूलपुटिकां मातृकां विन्यस्य

> "नाभेरथाचरणमा हृदयाच्च नाभि
> मूर्ध्नस्तथाहृदयमित्यमुना क्रमेण ।
> बीजैस्त्रिभिर्न्यसतु हस्ततले च सव्य-
> दक्षाह्वये द्वितयमित्युभयोस्तृतीयम् ॥
> मूर्धनि गुह्ये हृदये नेत्रत्रितयेऽपि कर्णयोरास्ये ।
> अंसद्वये च पृष्ठे कोर्परयोर्नाभिमण्डले न्यस्येत् ॥"

इत्याचार्योपदिष्टक्रमेण मन्त्राक्षराणि तनौ न्यस्याङ्गषट्कसृष्ट्यादित्रिकं च न्यस्य ऐं बीजं, सौः शक्तिः, क्लीं कीलकं, श्रीत्रिपुरादेवीप्रसादसिद्ध्यर्थे विनियोग इति स्मृत्वा आं ह्रीं क्रों य- र- ल- व- श- ष- स- हों- सं- हं- सः श्रीत्रिपुरादेव्याः प्राणा इह प्राणाः । एवं श्रीत्रिपुरादेव्या जीव इह स्थितः । एवं श्रीत्रिपुरादेव्याः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा हंसः[2] सं लं इति[3] प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा अक्षस्रक्पुस्तकाभयवरमुद्रा अक्षस्रजे नमः[4] पुस्तकाय अभयाय वरदाय इति विरचय्य । ऐं इति योनिमुद्रां च बद्ध्वा ध्यात्वा यथाविधि षोडशभिः पञ्चभिर्वा मानसोपहारैरभ्यर्च्य ब्रह्मार्पणमनुना ब्रह्मार्पणम् आत्मार्पणमनुना आत्मार्पणं च कृत्वा मूलेनैक्यमुपगम्य स्वयं देवतामूर्तिर्भूत्वा गुरोर्गृहीतां सुगन्धालिप्तां सुधूपितां चाक्षमालामादाय मन्त्रजपं कुर्यात् । स च जपस्त्रिविधः, वाचिकोपांशुमानसभेदात् । यथोक्तं —

---

१. 'ण इ', २. 'सं हं सः इ' क. पाठः. ३. 'ति हृदि प्रा' ग. पाठः. ४. 'मः विद्यापु', क. ख. पाठः.

"यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टैः शब्दपदाक्षरैः ।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा जपयज्ञः स वाचिकः ॥
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रं किञ्चिदोष्ठौ प्रचालयेत् ।
ईषच्छब्दं स्वयं विद्यादुपांशुः स जपः स्मृतः ॥
ध्यानं यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम् ।
शब्दार्थचिन्तनाभ्यासः स उक्तो मानसो जपः ॥"

इति । जपान्ते पुनर्देवीं पृथक् स्वपुरत इव सञ्चिन्त्य

"गुह्यातिगुह्यगोप्त्रि! त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि! त्वत्प्रसादाद्धृदि स्थिते! ॥"

इति मन्त्रेण देव्याश्चरणमूले जपं समर्प्य प्राणायामत्रयं व्यापकत्रयम् अङ्गुल्यादिन्यासं च विदध्यादिति त्रिपुरामन्त्रजपसामान्यसंक्षेपः । विस्तरस्त्वन्यतो द्रष्टव्य इति शिवम् ॥ ६ ॥

चिन्तितं जप्तं वेत्यत्र कथं चिन्ता कार्येत्यपेक्षायां निष्कलरूपस्य ज्योतिर्मयी वाङ्मयीत्युपदिष्टत्वादैन्द्रस्येवेति सकलनिष्कलरूपस्य चोपदिष्टत्वादवशिष्टं देव्याः सकलं रूपमाह वाम इति पञ्चभिः श्लोकैः ।

**वामे पुस्तकधारिणीमभयदां साक्षस्रजं दक्षिणे**
**भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां कर्पूरकुन्दोज्ज्वलाम् ।**
**उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तिनयनस्निग्धप्रभालोकिनीं**
**ये त्वामम्ब! न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः ॥**

वाम इति । हे अम्ब! जगन्मातः! ये त्वां मनसा न शीलयन्ति न ध्यायन्ति । वाचा त्वन्मन्त्रं न जपन्ति च । तेषां कुतः कवित्वं क्रान्तदर्शित्वं सार्वज्ञ्यं, न कुतश्चित् । ये तु पुनः शीलयन्ति, तेषां कवित्वाभावो वा कुतः । कीदृशीं त्वां, चतुर्षु करेषु वामे ऊर्ध्वाधःक्रमेण पुस्तकधारिणीम् अभयदाम् अभयमुद्राधारिणीं च । दक्षिणे साक्षस्रजं भक्तेभ्यो वरदानपेशलकरां स्फटिकाक्षमालाधारिणीं वरदमुद्राधारिणीं च । कर्पूरकुन्दोज्ज्वलां कर्पूरवत् कुन्दवच्चोज्ज्वलां शोभमानाम् । उज्जृम्भाम्बुजपत्रकान्तिनयनस्निग्धप्रभालोकिनीम् उज्जृम्भा उज्जृम्भणं

विकासः, तया युक्तं यदम्बुजं तस्य पत्रम् अन्तर्दलं, तस्य कान्तिरिव कान्तिर्येषां नयनानां, तेषां स्निग्धः कृपारसार्द्रः प्रभायुक्तश्च य आलोक आलोकनम् ईक्षणं, तद्वतीम् । सुसिताम्बरानुलेपमाल्यालङ्कृतां कपर्दभारविधृतचन्द्रखण्डां चेति द्रष्टव्यम् ॥ ७ ॥

एवं बीजत्रयसाधारणं ध्येयं रूपं सार्वज्ञ्यलक्षणं तत्सेवाफलं चोक्त्वा इदानीं शक्तिकामराजवाग्भवक्रमेण द्वादशान्तमूलाधारहृत्पद्मेषु ध्येयसाधारणं रूपं फलं चाह[१]—

**ये त्वां पाण्डरपुण्डरीकपटलस्पष्टाभिरामप्रभां**
**सिञ्चन्तीममृतद्रवैरिव शिरो ध्यायन्ति मूर्ध्नि स्थिताम्[२] ।**
**अश्रान्तं विकचस्फुटाक्षरपदा निर्याति वक्त्रोदरात्**
**तेषां भारति ! भारती सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवत् ॥**

ये त्वां पाण्डरेति। हे भारति! ये त्वां मूर्ध्नि स्थितां ध्यायन्ति, तेषां वक्त्रोदराद् अश्रान्तम् अक्लेशेन भारती निर्याति। सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवत् सुरसरिद् गङ्गा तस्याः कल्लोलैः बृहत्तरङ्गैः लोलाश्चञ्चला या ऊर्मयः प्रवाहाः तद्वत्। कीदृशी भारती, विकचस्फुटाक्षरपदा विकचान्यसंकुचितानि स्फुटाक्षराणि (पदानि यस्यां?) तत्तदर्थाभिधाने समर्थानि सुप्रसन्नाक्षराणि च पदानि यस्यां सा तथोक्ता। किंवर्णां ध्यायन्ति, पाण्डरपुण्डरीकपटलस्पष्टाभिरामप्रभां पाण्डरपुण्डरीकपटलवत् सितपद्मपुञ्जवत् स्पष्टा धवला अभिरामा हृद्या च प्रभा यस्यास्ताम्। किंव्यापाराम्, अमृतद्रवैः स्वाङ्गगलितैः साधकस्य शिरः सिञ्चन्तीमिव। इवशब्दो वाक्यालङ्कारे।

"मूर्ध्नि पुस्ताक्षमालादिवरदोज्ज्वलविग्रहाम् ।
शिवशक्त्यात्मिकां ध्यायेत् कुन्देन्दुधवलप्रभाम्" ॥ ८ ॥

---

१. 'पफलमाह' क. पाठः. २. 'माम् ॥ श्रीभारति! ये त्वां मूर्ध्नि स्थितां ध्यायन्ति, तेषां वक्त्रोदरादश्रान्तसंक्लेशेन भारती निर्याति सुरसरित्कल्लोललोलोर्मिवदिति पुरस्तादेव द्रष्टव्यम् ॥ एवं' ग. पाठः.

एवं वाग्भवादिधर्मार्थिभिः सेव्यं रूपं समुपदिश्य कामार्थिभिर्ध्येयं रूपं समुपदिदिक्षुर्द्वितीयबीजस्यासाधारणं ध्यानं फलं चाह —

**ये सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितां त्वत्तेजसा द्यामिमा-**
**मुर्वीं चापि विलीनयावकरसप्रस्तारमग्नामिव ।**
**पश्यन्ति क्षणमप्यनन्यमनसस्तेषामनङ्गज्वर-**
**क्लान्तास्त्रस्तकुरङ्गशावकदृशो वश्या भवन्ति ध्रुवम् ॥**

ये सिन्दूरेति । भारतीति संबोधनमनुषज्यते ।

"गुह्यस्थितं वा मदनस्य बीजं
जपारुणं रक्तसुधां स्रवन्तम् ।
विचिन्त्य तस्मिन् विनिवेश्य साध्यां
वशीकरोत्येव विदग्धलोकः ॥"

इत्याचार्यैरनुगृहीतत्वादिहोत्तरश्लोके 'ये त्वां चेतसी'ति वक्ष्यमाणत्वादिह स्थानविशेषानुक्तेश्चाधारपद्मस्थरूपध्यानमेतदिति गम्यते । न च पूर्वापरविरोधः । उपासनाविशेषवदाधारविशेषस्यापि कार्यविशेषेऽभिमतत्वात् । पूर्वं सार्वज्ञ्यार्थमुपासनं सर्वेषामुक्तम्, इदानीमेकैकस्य बीजस्य धर्मादिफलत्वमुच्यत इति सिद्धो विशेषः । कामगिरिपीठत्वं कामेश्वरीस्थानत्वं चाधारपद्मस्य । श्रीसौभाग्यमार्गेऽप्ययमर्थमुपोद्बलयति । हे भारति! इमां द्याम् अन्तरिक्षं सिन्दूरपरागपुञ्जपिहितामिव, उर्वीमपि च यावकरसप्रस्तारमग्नाम् अलक्तकद्रवप्रवाहप्लुतामिव ये क्षणमपि पश्यन्ति । केन, त्वत्तेजसा अत्यन्तरक्तवर्णाया भवत्याः सर्वतःप्रसृतश्रीमूर्तिप्रभाप्रतानेन । किं कृत्वा, अनन्यमनस एकाग्रचेतसो भूत्वा। स्वासने विधिवदुपविश्य प्राणायामैर्दोषान् संहृत्य स्वविषयेभ्य इन्द्रियाणि मनसा सह प्रत्याहृत्येत्यर्थः । यद्वा, अनन्यमनसः स्वात्मानमेव तादृशीं त्वां गुरुतः शास्त्रतोऽनुभवतश्च निश्चिन्वानाः

१. 'र्वीं' क. ख. पाठः. २. 'हि' ग. पाठः.

'अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति, न स वेद, यथा पशुरेवं स देवानामि'ति भेददर्शिनः श्रुत्या निन्दितत्वात्। उपपत्तेश्च। कथमात्मनोऽन्यस्या भवत्यास्तनुप्रभाब्धिमग्नं स्त्रीपुरुषात्मकं जगत् तथा ध्यातुः पुंसो वशवर्ति भवेत्, स्वयं वा कुतस्तस्य हृदि प्रत्यक्षतामुपगच्छेत्। न खल्वात्मनोऽन्यः कश्चिद् देहान्तः समस्तीति हि सर्वसम्मतमित्युपपत्तिः सिद्धा। किं पुनस्तेषामित्यत्राह — तेषामिति। अनङ्गज्वरक्रान्ताः एतस्मिन् श्रुते दृष्टे वा संभूतेनानङ्गेन अन्तर्गूढेन यो ज्वरो महांस्तापस्तेन क्रान्ता विवशीभूततनवः। त्रस्तकुरङ्गशावकदृशः त्रस्तस्य भीतस्य कुरङ्गशावकस्य मृगबालकस्य दृग् दृष्टिरिव दृग् यासां तास्तथा। सर्वाङ्गसुभगाः स्त्रियोऽपि तेषां वश्या भवन्ति, याः स्ववशीभूताखिलभूमण्डलानां भूपतीनामपि न सर्वथा वशगाः स्युः। ध्रुवं निश्चितमेतत्। त्वद्भक्तजनानां स्वानुभव एवात्र मानमिति भावः।

"आधाराब्जे धनुर्बाणवरदाभयलक्षिताम्।
ध्यायेद् बन्धूकपुष्पाभां कामराजस्वरूपिणीम्" ॥ ९ ॥

एवं विशिष्टविषयपरिग्रहेण सर्वकामावाप्तिद्वितीयबीजोपासनफलमुपदिश्यार्थिनामुपासनमुपदिदिक्षुराद्यबीजस्यासाधारणं ध्यानं फलं चाह —

चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधरामाबद्धकाञ्चीस्रजं
ये त्वां चेतसि तद्गते[1] क्षणमपि ध्यायन्ति कृत्वा स्थिराम्।
तेषां वेश्मसु विभ्रमादहरहः स्फारीभवन्त्यश्चिरं
माद्यत्कुञ्जरकर्णतालतरलाः स्थैर्यं भजन्ते श्रियः॥

चञ्चदिति। अत्रापि भारतीत्यनुषज्यते। ये त्वां चेतसि हृत्पद्मे स्थिरां कृत्वा निश्चित्य। क्षणमपि ध्यायन्ति स्वात्मतयोपासते।

---

१. 'पि व' क. पाठः.

कथंभूतां, चञ्चत्काञ्चनकुण्डलाङ्गदधरां चञ्चद्भ्यां[2] कम्पमानाभ्यां काञ्चनकुण्डलाभ्यां सहाङ्गदानि धारयतीति तथा, ताम्। आवद्धकाञ्चीस्रजम् आबद्धा काञ्ची काञ्चनकमलस्रक् च यया ताम्। आवद्धकाञ्चीसूत्रां वा। चेतसि स्थिरीकरणं कुत इत्यत उक्तं—तद्वते! सर्वभूतान्तरा[3]त्मत्वेन तत्रैव सदा वर्तमाने[4]! इति संबोधनविशेषणमेतत्। तेषां वेश्मसु श्रियः सम्पदः चिरं स्थैर्यं भजन्ते। कथंभूताः, माद्यत्कुञ्जरकर्णताललरलाः माद्यतः मदोन्मुखस्य कुञ्जरस्य कर्णतालवत् तरला अस्थिराः, अस्थिरस्वभावा अपीत्यर्थः। किं कुर्वन्त्यः, अहरहः स्फारीभवन्त्यः वृद्धिमुपगच्छन्त्यः। कुतो हेतोः, विभ्रमाद् विलासात्। भूहिरण्यपशुव्रीहियववाहनरत्नवसनाद्यनेकरूपप्रकाशनात्। यद्वा माद्यत्कुञ्जरकर्णताललरलाः माद्यतां कुञ्जराणां कर्णतालेन तरलाश्चञ्चला अपि स्थैर्यं भजन्त इति गजाश्वादिसिद्धिरुद्घाटिता।

"हृत्पद्मे काञ्चनप्रख्यां पाशाङ्कुशसमुज्ज्वलाम्।
वरदाभयहस्तां च ध्यायेद् वाग्भवरूपिणीम्" ॥ १० ॥

अथ मोक्षार्थिभिर्ध्येयं रूपमुपदेष्टुकामः पूर्वोक्तनिष्कलाक्षरस्य द्वितीयबीजगतस्य, 'तत्सारस्वतमि'ति सरस्वतीतत्त्वज्ञानान्तरङ्गसाधनत्वेन स्वोपदिष्टस्यासाधारणं ध्यानं फलं चाह—

**आर्भट्या शशिखण्डमण्डितजटाजूटां नृमुण्डस्रजं**
**बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधरां प्रेतासनाध्यासिनीम्।**
**त्वां ध्यायन्ति चतुर्भुजां त्रिनयनामापीनतुङ्गस्तनीं**
**मध्ये निम्नवलित्रयाङ्किततनुं त्वद्रूपसंवित्तये ॥११॥**

आर्भट्येति। अत्रापि भारतीत्यनुषज्यते। आर्भट्या आर्भटिकासिकया।

"ऊरुद्वयं निधायोर्वोः स्थितिरार्भटिकासनम्।"

१. 'त्वा', २. 'ति त' ख., 'न्तीं' ग. पाठः. ३. 'रत्वे' क. पाठः ४. 'ने! सं' ख. पाठः.

तेन । प्रेतासनाध्यासिनीं, प्रकर्षेण इतः सङ्गतः स्वमेलनं प्राप्तः परमशिवः प्रेतः, स एव वासुकिशय्यायां सुखं शयानः प्रेतासनं, तदधिष्ठितः तस्मिन्नासितुं शीलं यस्यास्ताम् । शिववामाङ्कभुवि निषण्णामित्येतत् । एवम्भूतां त्वाम् । त्वद्रूपसंवित्तये तव स्वरूपसाक्षाद्बोधसिद्धये ध्यायन्ति । किंविशिष्टां, शशिखण्डमण्डितजटाजूटां, शशिखण्डेन शशिकलया मण्डितो जटाजूटो यस्यास्ताम् । नृमुण्डस्रजं मल्लिकामालावतीं, नृमुण्डवत् स्थूलवृत्तधवलमुक्ताफलस्रजं वा, चम्पकस्रग्विणीं वा । बन्धूकप्रसवारुणाम्बरधरां बन्धूकप्रसववद् अरुणम् अम्बरं वासो धारयतीति तथा, ताम् । चतुर्भुजां चत्वारो भुजा यस्यास्ताम् । त्रिनयनां त्रीणि नयनानि यस्यास्ताम् । आपीनतुङ्गस्तनीम् आपीनौ तुङ्गौ च स्तनावस्या इति तथा, ताम् । मध्ये निम्नवलित्रयाङ्किततनुं मध्ये मध्यप्रदेशे निम्ना अवनता वलित्रयाङ्किता च तनुर्यस्यास्तां, सर्वाङ्गसुभगामिति यावत् ।

"इक्षुचापप्रसूनेषुपाशाङ्कुशलसद्भुजाम् ।
ईशान्ताब्जेऽरुणां ध्यायेद् देवीं कामकलामयीम् ॥

अथवा वाग्भवेनैव मूलाधारे स्मरेच्छिवाम् ।
हृदये कामबीजेन भ्रूमध्ये चान्तिमेन वै ॥

द्वादशान्ते स्मरेद् देवीं ततः कामकलाकृतिम् ।
हृदये वा स्मरेदेनां प्राचीनैरुक्तमार्गतः ॥

अक्षस्रक्पुस्तकाभीतिवराढ्यामरुणाकृतिम् ।"

ऐन्द्रस्येवेतीहोपदिष्टं सकलनिष्कलध्यानमाचार्यैर्विवृतं—

"वह्नेर्बिम्बे दलपरिवृताधारसंस्थं समुद्य-
द्बालार्काभं स्वरगणसमावेष्टितं वाग्भवाख्यम् ।
वाण्या स्वीयाद् वदनकुहरात् सन्ततं निःसरन्त्या
ध्यायेन्मन्त्री प्रततकिरणप्लावृतं दुःखशान्त्यै ॥

१. 'का' ख. ग. पाठः.

हृत्पद्मस्थितभानुबिम्बविलसद्योन्यन्तरालोदितं
मध्याह्नार्कसमप्रभं परिवृतं वर्णैः कफाद्यन्तकैः ।
ध्यायेन्मन्मथराजबीजमखिलब्रह्माण्डविक्षोभकं
राज्यैश्वर्यविवर्धिनीमपि रमां दत्त्वा जगद् रञ्जयेत् ॥
मूर्ध्नोऽथ द्वादशान्तोदितशशधरबिम्बस्थयोनौ स्फुरन्तं
संवीतं व्यापकार्णैर्धवलरुचिमकारस्थितं बीजमन्त्यम् ।
ध्यात्वा सारस्वताच्छामृतजललुलितं दिव्यकाव्यादिकर्ता
नित्यं क्ष्वेलापमृत्युग्रहदुरितविकारान् निहन्त्याशु मन्त्री ॥"

इति । एकैकबीजजपक्रमश्चाचार्यैरनुगृहीतः —

"अच्छाभः स्वच्छभूषो धरणिमयगृहे वाग्भवं लक्षमेकं
यो जप्यात् तद्दशांशं विहितहुतविधिर्मन्त्रजप्ताञ्जनाभिः ।
काव्यैर्नानार्थवृत्तैर्भुवनमखिलमापूरयेच्च स्वकीयै-
र्मारार्त्ता विह्वलाभिः पुनरयमनिशं सेव्यते सुन्दरीभिः ॥
रक्ताकल्पोऽरुणतरदुकूलार्तवालेपहृद्यो
मौनी भूसद्मनि सुखनिविष्टो जपेल्लक्षमेकम् ।
बीजं मन्त्री रतिपतिमयं प्रोक्तहोमावसानं
योऽसौ लोके स सुरमनुजैः सेव्यते पूज्यते च ॥
धरापवरके तथा जपतु लक्षमन्त्यं मनुं
सुशुक्लकुसुमांशुकाभरणलेपनाद्यो वशी ।
अमुष्य वदनादनारततयोच्चरेद् भारती
विचित्रपदपद्धतिर्भवति चास्य लोको वशे ॥"

एवं पञ्चश्लोक्या देव्याः सकलध्यानप्रकारः प्रकटीकृत इति शिवम् ॥ ११ ॥

'ये त्वामम्ब ! न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः' इत्यत्र त्वत्सेवाहीनानां सार्वज्ञ्यमुपलक्षणन्यायेन सर्वैश्वर्यं च दुर्लभमित्युक्तम् । इदानीं त्वत्सेवकानां तदुभयमिदैनात्यल्पानामपि सुलभमित्याह —

---

१. 'द्रुक्तिही' ख. पाठः.

जातोऽप्यल्पपरिच्छदे क्षितिभुजां सामान्यमात्रे कुले
निश्शेषावनिचक्रवर्तिपदवीं लब्ध्वा प्रतापोन्नतः ।
यद् विद्याधरबृन्दवन्दितपदः श्रीवत्सराजोऽभवद्
देवि! त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः सोऽयं प्रसादोदयः ॥

जात इति । हे देवि ! सोऽयं त्वच्चरणाम्बुजप्रणतिजः तव चरणाम्बुजयोः प्रणतेर्जातः । प्रसादोदयः भवत्याः प्रसादोऽनुग्रहाभिमुख्यं, तस्योदय उद्भव एव । त्वत्सेवाफलमेव भवतीति वृद्धा आचक्षत इति शेषः। कोऽसावित्यत उक्तं —जात इत्यादि । श्रीवत्सराजो नाम राजा क्षितिभुजां सामान्यमात्रे, न मूर्धाभिषिक्तानां क्षत्रियाणां कुले, किन्तु माण्डलिकानाम् । तत्रापि न भूरिधनधान्यपशुपरिषत्क्षेत्रादिमति, किन्तु अल्पपरिच्छदे कुले जातोऽपि प्रतापोन्नतः प्रतापो नामारीणां दूरादेव भयजनकत्वं, तेनोन्नतः उन्नतिमतिशयं प्राप्तः सन् । निःशेषावनिचक्रवर्तिपदवीं, निःशेषायाश्चतुःसागरपर्यन्तायाः अवनेः चक्रवर्ती आज्ञाधरः[1] सार्वभौमो राजा निःशेषावनिचक्रवर्ती तस्य पदवीम् । लब्ध्वा अक्लेशतः प्राप्य । विद्याधरबृन्दवन्दितपदः, विद्याः

"अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेत्यनुक्रमात् ।
अर्थशास्त्रं परं तस्माद् विद्यास्त्वष्टादश स्मृताः ॥"

इति श्रीवायवीय उपदिष्टाः, ताः ये धारयन्ति पठन्ति शृण्वन्ति परेभ्योऽनुगृह्णन्ति यथाधिकारं स्वयं तदर्थमनुतिष्ठन्ति च, ते विद्याधराः, तेषां बृन्देन सङ्घेन वन्दितपदः वन्दितौ पादौ यस्य स तथा । स्वयं तासु तासु विद्यासु परिपक्वपक्षपतितेषु प्रधानस्तत्तद्विद्याधराणां द्विजादीनां पालकः पूजकश्चेति यावत् । एवं सम्राट् सर्वज्ञश्चाभवदिति

१. 'शेषतः' क. पाठः. २. 'प' क. ख. पाठः.

यत्, सोऽयमिति संबन्धः। नृत्तगीतवाद्यादिचतुष्षष्टिकलाविद्यावन्तो विद्याधरा इति न व्याख्येयं, राज्ञः किञ्चिज्ज्ञतासूचकत्वात्। नापि त्रिपुराविद्याभेदाभिज्ञा विद्याधराः, राज्ञः सर्वदेवताविग्रहवत्यां परदेवतायां भक्तिराहित्यव्यञ्जकत्वात्। नापि विद्याधरा देवयोनिष्ववर्वाचीनपदस्थाः केचन वैमानिकाः तेषां वृन्देनेति व्याख्येयं, दिव्ये विद्याधरपदे दीव्यतां तेषां सम्राजो ह्यस्य सेवकत्वासंभवात्। अत एवोक्तं श्रुत्या — 'तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्। स एको मानुष आनन्दः। ते हि ये शतं मानुषा आनन्दाः स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः' इत्यादि ॥ १२ ॥

अथ 'ये त्वामम्ब ! न शीलयन्ति मनसा तेषां कवित्वं कुतः' इत्युक्तमर्थं विवृण्वन् विपर्यये दोषमाह —

**चण्डि ! त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते बिल्वीदलोल्लुण्टन-**
**त्रुट्यत्कण्टककोटिभिः परिचयं येषां न जग्मुः कराः ।**
**ते दण्डाङ्कुशचक्रचापकुलिशश्रीवत्समत्स्याङ्कितै-**
**र्जायन्ते पृथिवीभुजः कथमिवाम्भोजप्रभैः पाणिभिः ॥**

चण्डीति। हे चण्डि ! स्वसेवाविमुखलोकविभियकरणनिपुणे ! इह येषां देहिनां कराः त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते तव चरणाम्बुजार्चनार्थम्। बिल्वीदलोल्लुण्टनत्रुट्यत्कण्टककोटिभिः बिल्वीदलानि बिल्वपत्राणि तेषाम् उद् उच्चैः अनुवासरं भूरिशो लुण्टने छेदने त्रुट्यतां छिद्यमानानां कण्टकानां कोटिभिरग्रैः। परिचयं मेलनं विलेखनरूपं न जग्मुः।

"पत्रेषु बिल्वपत्रं स्यान्नान्यत् पत्रं विशिष्यते।
इयमारंसरोजानामीषद्विकसितं भवेत् ॥"

इत्यागमेषु पुष्पविधानाद् बिल्वीदलेत्युक्तम्। ते कथमिव पृथिवीभुजो जायन्ते। किंलक्षणाः, दण्डाद्यङ्कितैः अम्भोजप्रभैश्च पाणिभिरुपल-

१. 'रे सरोजादार्वाप' ख. पाठः.

क्षिताः । कथं वा कवयो जायन्ते इति शेषः । 'वामे पुस्तके'त्यत्र सार्वज्ञ्येन साम्राज्यमुपलक्षितम्, इह साम्राज्येन सार्वज्ञ्यमिति भेदः ॥ १३ ॥

'त्वच्चरणाम्बुजार्चनकृते' इत्यत्र केषां ते चरणार्चनाधिकारः, कैर्वा साधनैः, किंलक्षणा वा भवत्यर्चनीया, किं वा तवार्चकानां फलं, कियता कालेन वा तद् भवेदित्यपेक्षायामाह —

**विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे क्षीराज्यमध्वासवै-**
**स्त्वां देवि! त्रिपुरे! परावरमयीं सन्तर्प्य पूजाविधौ ।**
**यां यां प्रार्थयते मनः स्थिरतया तेषां त एते ध्रुवं**
**तां तां सिद्धिमवाप्नुवन्ति तरसा विघ्नैरविघ्नीकृताः ॥१४॥**

विप्राः क्षोणिभुज इत्यादि । हे त्रिपुरे! देवि! विप्राः क्षोणिभुजो विशस्तदितरे स्त्रीशूद्रादयो विलोमजाश्च ये, त एते सर्वे पूजाविधौ पूजाया विधानं करणं विधिस्तस्मिन् । क्षीरादिभिः परावरमयीं सकलनिष्कलाकारां त्वां सन्तर्प्य गन्धाक्षतकुसुमं बिन्दुमेकमपि दत्त्वा तोषयित्वा यां याम् ऐहिकीमामुष्मिकीं वा अल्पामनल्पां वा सिद्धिं फलं तेषां मनः स्थिरतया नित्यं प्रार्थयते, तां तां विघ्नैः प्राप्तैरप्यविघ्नीकृता एव तरसा अस्मिन्नेव जन्मनि अव्यवहितजन्मान्तरे वा अवाप्नुवन्ति । ध्रुवं निश्चितमेतत् । त्वद्भक्तानां स्वानुभव एवात्र मानमिति भावः । यथाहुः —

"यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः ।
श्रीशङ्करीतर्पणतत्पराणां भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥"

इति । श्रीभगवताप्यनुगृहीतं —

"नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥"

इति,

"पार्थ! नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात! गच्छति ॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥"

इत्यादि । किं क्षीरादि विप्रादिभिः प्रत्येकं सर्वं संबध्यते, किं वा क्रमेणैकैकमेकैकेन विप्रादिनेति विशये ब्राह्मणैराज्यस्य क्षत्रियैर्वैश्यैश्च क्षीरस्य चार्चनायामवश्यमङ्गीकरणीयत्वान्न द्वितीयपक्षो युज्यते। 'ब्राह्मणो न सुरां पिबेत्' इति वाक्यमदीक्षितविषयं, न ब्राह्मणमात्रविषयम् । अतः सौत्रामण्यामिव ब्राह्मणस्यापि पैष्ट्या मदिरया परदेवतातर्पणं न दुष्यतीति प्रथमपक्षो ग्राह्यः । तत्रापि यथासम्भवं यथाशक्ति यथामति यथारुचि च सर्वेषां सर्वद्रव्याणि ग्राह्याणि । अत एव श्रुतिः—'ब्राह्मणं परिक्रीणीयादुच्छेषणस्य पातारमि'ति । एवञ्चेद्, 'इष्टशिष्टमश्नीयादि'ति विधानाद् ब्राह्मणस्यासवपानकर्तव्यता प्राप्नोति चेत् । न । सौत्रामण्यामिव घ्राणभक्षणेनापीष्टशिष्टाशनसिद्धेः ।

"लोके निकृष्टमुत्कृष्टं लोकोत्कृष्टं निकृष्टकम्"

इति कौलमार्गस्थानामङ्गीकाराच्च । यथोक्तमुत्पलदेवेन श्रीमत्स्तोत्रावल्यां—

"वेदागमविरुद्धाय वेदागमविधायिने ।
वेदागमसतत्त्वाय गुह्याय स्वामिने नमः ॥"

इति । पराक्रान्तं चात्र पूर्वसूरिभिरिति किमास्माकीनेन प्रयासेन। तथाहि तद्वचनं—

"सर्वागमविरोधित्वान्नेदं प्रामाण्यमर्हति ।
अपि प्रत्यक्षसिद्धत्वात् प्रमाणं तु शिवोदितम् ॥

अयं तु निर्णयोऽत्र स्याद् ये यत्रानधिकारिणः ।
तेषां तदप्रमाणं स्यात् प्रमाणं चाधिकारिणाम् ॥

नाधिकारी न कोऽप्यत्र न प्रामाण्यं प्रयोजकम् ।
प्रायः प्रत्यक्षसिद्धत्वं शिवोक्तत्वं च नो मतम् ॥"

इत्यादि । तदेवं सर्वेषां सर्वद्रव्याणि यथासम्भवं यथाशक्ति यथारुचि च ग्राह्याणीति रमणीयम् ।

अयमिह पूजाक्रमः—सौवर्णे राजते ताम्रमये वा पट्टे भूपुर-द्वितयवृत्तान्वितमष्टदलं पद्मं तत्कर्णिकायां,

"वह्नेः पुरद्वितयवासवयोनिमध्य-
सम्बद्धवह्निवरुणेशसमाश्रिताश्रि ।
देव्यर्चनाय विहितं मुनिभिः पुरैव
लोके सुदुर्लभमिदं नवयोनिचक्रम् ॥"

इत्युक्तलक्षणं नवयोनिचक्रं च विलिख्य विचित्रे संक्षालिते सुगन्धा-लिप्ते सुधूपिते च दारुमये पीठे यथाविध्यभिषेकादिभिः संस्कृत्य नि-धाय पूर्वोक्तक्रमेण जपं कृत्वा न्यासावसाने चाग्रतो वामभागे शङ्खे सामान्यार्घ्यं हैमादिपात्रे तद्दक्षिणतो विशेषार्घ्यं च संपाद्य स्वमूर्धनि श्रीनाथपङ्क्तिं रहस्यचरणचतुष्कं चाधारे गणेश्वरं हृदि मूलविद्यया सपरिवारां देवीं च गन्धाक्षतकुसुमैरमृतबिन्दुभिस्तर्पयित्वा स्वयं तत्त्व-त्रयप्रकाशनं विधाय श्रीत्रिपुरादेवीवपुर्भूत्वा बाह्यपूजामारभेत । अत्र विशेषार्घ्यगतोऽयं क्षीरादिद्रव्यविकल्पः । अयमिहोपदेशाध्वा—ब्राह्मणः क्षीरमेव सुशृतं सम्पाद्य तेनामृतीकृतेन विशेषार्घ्यं पूरयित्वा-र्चयेत् । तदलाभे त्वाज्येन, तदलाभे मधुना, तस्याप्यलाभे आसवेन, तस्याप्यलाभे गन्धोदकेन । क्षत्रियस्त्वाज्येन, तदलाभे क्षीरेण, तद-लाभे मधुना, तस्याप्यलाभे आसवेन, तस्याप्यलाभे सुगन्धोदकेन । वैश्यस्तु मधुना, तदलाभे घृतेन, तदलाभे क्षीरेण, तस्याप्यलाभे आसवेन, सर्वालाभे गन्धोदकेन । शूद्रस्त्वासवेन, तदलाभे मधुना, तदलाभे त्वाज्येन, तदलाभे क्षीरेणेति । सर्वालाभे सुगन्धोदकेनार्घ्या-

---

१. 'नम्' क. पाठः. २. 'र', ३. 'शं हृ', ४. 'प्राश' ग. पाठः.

पादनमस्यापि समानमिति । इयानेवात्र दक्षिणवामाध्वगयोर्द्विजयोर्भेदः । कोऽसौ । यदासवेन संन्तर्पयति परदेवतां, तदान्ते घ्राणभक्षणमात्रं दक्षाध्वगेन कार्यम् । तत्त्वत्रयप्रकाशनं तु गन्धोदकेनैव शङ्खगतेन । अपरेण तु तत्त्वत्रयप्रकाशनादिकमासवेनैव कार्यमिति । यद्यप्यवाच्योऽयमर्थः, तथापि तत्त्वचिन्तायां सुगोप्यमपि वक्तव्यमित्यस्माभिः प्रोक्त इति । अथ बाह्यार्चनविधिः — पीठवामदक्षगौ गुरुगणेशौ, ततः कालाग्निरुद्राधारशक्त्यनन्तपृथिवीविद्याब्धिपोताम्बुजासनचक्रासनसर्वमन्त्रासनसाध्यसिद्धासनरत्नपर्यङ्कशक्तिपीठासनानि मध्येऽर्चयेत् । कालाग्निरुद्रादयश्चतुर्थ्यन्तैर्नमोन्वितैः स्वनामभिः पूज्याः, विद्याब्ध्यादयः शुद्धाबालात्रिपुरवासिनीत्रिपुराश्रीत्रिपुरादेवीत्रिपुरासिद्धामन्त्रैः । धर्मादीन् पीठपादचतुष्कत्वेनाग्न्यादिकोणेष्वधर्मादींस्तद्गात्रत्वेन प्रागादिचतुर्षु दिक्षु श्रीमद्द्वादशार्धविद्यया तदुपरि पुष्पतूलिकमभ्यर्च्य तदुपरि मायाविद्ये पद्मं चेष्ट्वा तद्दलेषु कर्णिकायां च नव शक्तीर्यजेत् ।

इच्छा ज्ञाना क्रिया कामी कामदायिन्यनन्तरम् ।
रतिनी रतिपूर्वा च प्रिया नन्दा मनोन्मनी ॥

ततो नवयोनिं मध्ययोनौ शक्तिद्वादशकं पीठचतुष्कं च ।

वामा ज्येष्ठा च रौद्री च साम्बिकेच्छा तथैव च ।
ज्ञाना क्रिया कुब्जिका च रविही(च?)सविषघ्निका ॥
दूतरी चैव सर्वाद्या नन्दाख्या चेति शक्तयः ।
रेखावक्रान्तरालेषु मध्यान्तं पूजयेदिमाः ॥

ऐं कामगिरिपीठाय नमः । क्लीं जालन्धरपीठाय नमः । सौः पूर्णगिरिपीठाय नमः । ऐं क्लीं सौः ओड्याणपीठाय नमः इति तदन्तः पीठचतुष्कं, मध्यकोणत्रयमध्येषु ह्सौः सदाशिवप्रेतपद्मासनाय नमः इति पीठं सगन्धाक्षतकुसुमामृतबिन्दुभिरभ्यर्च्य धूपदीपौ दत्त्वा ऐं क्लीं सौः श्रीत्रिपुरादेवीमूर्तये नम इति मूर्तिं स्पृष्ट्वा तस्यां स्वहृदयाज्ज्यो-

१. 'क्षवा', २. 'तर्प' ३. 'प्राश' ख. ग. पाठः.

तीरूपिणीं देवीं प्रवहनाड्यानन्दविद्ययावाह्य त्रिबालया व्याप्य लिपिन्यासमन्त्रन्यासाङ्गन्यासान्ते ऋष्यादिन्यासं प्राणप्रतिष्ठामुद्राप्रदर्शनं च प्राग्वत् कृत्वा नत्वा बालाद्यबीजेन

"आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
मधुपर्कं पुनः स्नानं वासोयुग्मं च भूषणम् ॥"

इत्युपचारान् दत्त्वा द्वितीयबीजेन त्रिशो दलादिभिरभ्यर्च्य तृतीयबीजेन सप्तवारं सप्तविंशतिवारं त्रिवारं वामृतबिन्दुं दत्त्वा परिवारार्चनं सानुज्ञो विदधीत । अक्षस्रजे नमः । विद्यापुस्तकाय अभयाय वरदाय इत्यायुधानि देवीकरपद्मेषु पुनरादिमां गुरुपादुकां देवीश्रीपादपद्मे अवशिष्टं देव्याः पृष्ठतः प्राङ्मध्ययोन्योरन्तराले परायै अपरायै परापरायै इति सामान्यतस्तत्रैवानन्तनाथादित्रिकं विशेषतः स्वगुरुद्वयं तत्पुरतः प्राक्प्रत्यक्तयेति पूजयेत् ।

पार्श्वयोश्च रतिं प्रीतिमग्रतश्च मनोभवम् ।
वह्नीशरक्षोवाय्वग्रचतुर्दिक्षु यथाक्रमम् ॥
मध्ययोन्यन्तराले चाप्यङ्गषट्कं प्रपूजयेत् ।
अभितो मध्ययोनेश्च द्वौ द्वौ पञ्चममग्रतः ॥
बाणान् सम्पूजयेत् पञ्च द्रांद्रींक्लींब्लूंसआदिकाः ।
शोषणमोहनसन्दीपनतापनमादनाः ॥
बाणाश्चतुर्थीनत्यन्ता ज्ञेयाः स्वस्वाङ्कमूर्तयः ।
सुभगा च भगा चैव तदन्ते भगसर्पिणी ॥
भगाद्या मालिनी चैव पूज्या दिग्योनिषु क्रमात् ।
अनङ्गानङ्गकुसुमा तथैवानङ्गमेखला ॥
अनङ्गमदना चैव पूज्याः स्युः कोणयोनिषु ।
ब्रह्माणीम.सिताङ्गेन माहेशीं रुरुणा सह ॥
कौमारीं चण्डसंज्ञेन क्रोधेन सह वैष्णवीम् ।
उन्मत्तेन च वाराहीमिन्द्राणीं च कपालिना ॥

भीषणेनापि चामुण्डीं संहारेणापि चण्डिकाम् ।
दलेषु हि यजेदेताश्चतुर्थ्यन्तैः स्वनामभिः ॥

आं ब्रह्माण्यै अं असिताङ्गभैरवाय इत्यादि ।

पुनरिन्द्रादिकान् दिक्षु बहिर्वज्रादिकांस्ततः ।

एवं परिवारान् सगन्धाक्षतकुसुमामृतबिन्दुभिरभ्यर्च्य देवीमूर्तौ चतुश्चत्वारिंशन्मन्त्रैः पुष्पाञ्जलिं कृत्वा धूपदीपौ दत्त्वा आरात्रिकं विधाय सघृतकदलीनालिकेरोपदंशं सशर्करं च सुशृतं शाल्योदनं निवेद्य समर्प्याग्निकार्यं कृत्वा ओं ह्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यो हुं स्वाहेति बलिं विकीर्य नत्वा पानीयामृतं दत्त्वा निवेद्यं विसृज्य ऐं उच्छिष्ट चण्डालि! मातङ्गि! सर्ववशङ्करणि! स्वाहेति तस्यै दत्त्वा गण्डूषादि दत्त्वा प्रसन्नपूजां विधाय ब्रह्मार्पणमात्मार्पणं च कृत्वा तीर्थं स्वीकृत्य स्तुत्वा नत्वा स्वयं तन्मयो भूत्वा लयाङ्गं विधायात्मन्युद्वास्य प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा स्वात्मनि देवीमूर्तौ चैकैकवारं पुष्पाञ्जलिं कृत्वा शङ्खमभ्यर्च्य निधायाङ्घ्र्यादिपूर्वकं यथाकालं यथारुचि च मन्त्रं जप्त्वा योगान् कृत्वा देवतामयो भूयादिति शिवम् ॥ १४ ॥

'परावरमयीमि'त्यत्र किं तत् परं रूपं देव्या अवरं रूपं वा किमित्याकाङ्क्षायां परं रूपं तावदाह —

**शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे**
**त्वत्तः केशववासवप्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति ध्रुवम् ।**
**लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेऽप्यमी**
**सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परा गीयसे॥१५॥**

शब्दानां जननी त्वमत्रेति । हे वाग्वादिनि! वाचं वागिन्द्रियं वादयितुं शीलमस्या इति वाग्वादिनी, तत्र सम्बोधनं तथा, हे सरस्वति! अत्र शब्दार्थात्मके भुवने । त्वं शब्दानां जननीति सद्भिरुच्यसे, परापश्यन्त्यादिक्रमेण पञ्चाशद्वर्णात्मना परिणतत्वात् सर्वेषां वेदादि-

१. 'वैक्' ग. पाठः. २. 'च' ख. पाठः.

लक्षणानां शब्दानां तन्मयत्वाच्च। नैवं वयं ब्रूमः। किन्तु केशववास-वप्रभृतयः केशवप्रभृतयो वासवप्रभृतयश्च प्रधानार्था अपि। त्वत्तः करपादावाविर्भवन्ति। किं पुनरितरेऽर्थाः। ध्रुवं निश्चितमेतद्, अर्थस्य शब्दविवर्तत्वाद्। यथाहुः—

"अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥"

इति। अथवा 'तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत्। तन्नामरूपाभ्यां व्याक्रियत' इति नामरूपप्रपञ्चस्यैकस्मात् तत्त्वादेवाविर्भावश्रवणाच्छब्दस्य च त्वत्संभूतत्वसम्प्रतिपत्तेरर्थोऽपि त्वत्त एवाविर्भवतीति गम्यत इत्यर्थः। केशवप्रभृतय इति ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवा विश्वसर्गादिपञ्चकृत्य-कारिणो गृहीताः। वासवप्रभृतय इति सृज्यदेवमनुष्यादयः पशुपक्षि-सरीसृपस्थावराश्च। नन्वमरत्वेन नाशहीनानां केशवादीनां वासवादी-नां वा कथं जन्मेत्यत उक्तम्—अमी ब्रह्मादयः ते वासवादयोऽपि यत्र यस्यां खलु कल्पविरमे लीयन्ते च आकल्पजीवित्वेनैव तेषाममर-त्वं, न नित्यतया। जगज्जन्मादिक्रियाभावे तत्कर्तॄणां सत्त्वासम्भवात् सर्वेषां त्वत्स्वरूपत्वेन स्वरूपनाशाभावेऽप्युपाधिनाशेन नाशोपपत्तेश्चे-त्याशयः। उत्पत्तौ केशवाद् ब्रह्मेति* (केशवाद्ध्वनति सहितं?) संहारे ब्रह्मा केशवे इति विपरीत पाठः। उक्तं च सकलजननीस्तवे—

"मयूखाः पूष्णीव ज्वलन इव तद्दीप्तिकणिकाः
पयोधौ कल्लोलप्रतिभयमहिम्नीव पृषताः।
उदेत्योदेत्याम्ब! त्वयि सह निजैस्तात्त्विकगुणै-
र्भजन्ते तत्त्वौघाः प्रलयमनुकल्पं परवशाः॥"

इति,

"विरिञ्च्याख्या मातः! सृजसि हरिसंज्ञा त्वमवसि
त्रिलोकीं रुद्राख्या हरसि विदधासीश्वरदशाम्।
भवन्ती सादाख्या शिवयसि च पाशौघदलनै-
स्त्वमेवैकानेका भवसि कृतिभेदैर्गिरिसुते!॥"

१. 'किं' ख., 'र्ति' क. पाठः.

* 'केशवपदेन ध्वनितम्' इति स्यात्।

इति च। यैवं शब्दार्थप्रपञ्चजननी, सा त्वम्। उभाभ्यां शब्दार्थाभ्यामुत्तीर्णत्वाद् अचिन्त्यरूपगहना अचिन्त्येन रूपेणाखण्डानन्दसंविदात्मकेन गहना दुर्विज्ञेया। काचित्, परा सर्वोत्कृष्टा। माहेश्वरी शक्तिर्गीयसे,

"न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते"

इति। हन्त तर्हि शक्तिमान् शिवः प्रलयेऽपि पृथगस्तीति नाद्वितीयत्वमस्या इति चेद्, न। शक्तिशक्तिमतोर्भेदाभावात्। नो खलु तिलादेस्तच्छक्तेर्वा भेदं कश्चिदवैति। अत एवोक्तं पूर्वसूरिभिः—

"शिवः शक्तिरिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिणः"

इति।

"न शिवेन विना देवी देव्या च न विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव॥"

इत्यादि। अत्रैकस्मिन्नपि शिवशक्त्यात्मके चिदानन्दमात्रपरमार्थे प्रकाशविमर्शरूपे वा तत्त्वे संविदद्वैतवादे शक्तिप्राधान्येन व्यवहारः, ईश्वराद्वैतवादे शक्तिमत्प्राधान्येनेति भेदो ज्ञेयः। वाग्वादिनीति संबोधनेन श्रीवागीश्वरीमन्त्रः प्रतीकग्रहणेनोद्धृतो वेदितव्यः—वदवद वाग्वादिनी स्वाहा।

"अस्याः कण्वविराड्वागीश्वर्यो मुन्यादिकाः क्रमात्।
ह्रस्वदीर्घस्वरान्तस्थैर्हलिभरङ्गादि षट् चरेत्॥"

अयमस्य श्लोकस्य तात्पर्यार्थः—शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यामायाकालकलाविद्यारागनियतिपुरुषप्रकृत्यहङ्कारबुद्धिमनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवायुवह्निवारिवसुन्धराः षट्त्रिंशत् तत्त्वानि। तन्मय एवायं शब्दार्थात्मकः प्रपञ्चः। तानि च शिवशक्त्याख्यं सच्चिदानन्दघन तत्त्वं (तत्व ?)द-

१. 'ह्रणे', २. 'पदं वाग्वादिनीडं अ' क. पाठः.

र्पणनगरन्यायेनाविर्भवन्ति तिरोभवन्ति च। तदेव च तत्त्वं सर्वभूताना-
मन्तरहमस्मीति सदा भासते। अथापि स्वेन चिदानन्दघनरूपेण न
भासते, किन्तु शून्यबुद्धिप्राणदेहतयैव। अज्ञोऽहमिति शून्यतया,
सुख्यहं दुःख्यहमिति बुद्धितया, बुभुक्षुः पिपासुरहमिति प्राणतया,
स्थूलोऽहं कृशोऽहमिति देहतया। तत्त्वशून्यतया भाने हेतुर्माया, स्वे-
नात्मना भाने हेतुः शुद्धविद्या। ताभ्यामस्य बन्धमोक्षौ, मायया बन्धो
विद्यया मोक्षः। तत्र स्वरूपानन्दानुभवतृप्तोऽपि परमेश्वरो यदा स्वा-
त्मानमेव शब्दार्थात्मकप्रपञ्चात्मना विवर्तयितुमिच्छति तदा शिवः,
तदीया सा इच्छा शक्तिः, अप्रतिहतेच्छत्वात्। तदेव स्वात्मनि पूर्वमेव
सदिव सहसा भासमानं विश्वमहमिदमिति शुद्धविद्यया स्वात्मतयैव
पश्यन् सदाशिवः, स एवेदमहमिति कूपोदकमध्ये स्वदेहच्छायामिव
शुद्धविद्ययैव स्वात्मनः पृथगिव पश्यन् ईश्वरः, तेनानयोः पदयोः
मोक्षसुखानुभूतिरेव। माययात्मनः पृथगेव यदासौ विश्वं विश्वेश्वरं च
पश्यति, तदा पुरुषः। तस्यैव नित्यस्याप्यनित्यताभानहेतुत्वेन तस्मि-
न्नेव भासमानः कालः। सर्वकर्तुरपि किञ्चित्कर्तृत्वे हेतुः कला। सर्वज्ञ-
स्यापि किञ्चिज्ज्ञत्वकारणमविद्या। निरञ्जनस्यापि विषयाभिषङ्गहेतू
रागः। सर्वगतस्यापि ममेदं न ममेदमिति[3] नियमहेतुर्नियतिः। मायया
सहितमेतत्कालादि नियत्यन्तं कञ्चुकषट्कमिति भाष्यते सङ्कोचक-
त्वात् पुरुषस्य। अयं च सङ्कोचक्रमः—यदा पुनरीश्वरः स्वस्मात्
पृथगिव भासमानं विश्वं स्वमाययैव प्रकृतिसंज्ञया रजोगुणमवलम्ब्य
महदादिक्रमेण पृथगेव करोति, तदा स्रष्टा हिरण्यगर्भो भवति। तत्रै-
वान्तर्यामित्वेन प्रकृतेः सत्त्वगुणमवलम्ब्यानुप्रविश्य यदा नियमयति,
तदा विष्णुः। स एव प्रकृतेस्तमोगुणमवलम्ब्य यदा संहरति, तदा
रुद्रः। एवं गुणत्रयात्मिका प्रकृतिः। सैवेशशक्त्या पराख्यया क्षुभि-
तगुणा कालकर्मानुगुण्ये महान्तं सृजति। ततोऽहन्तत्त्वम्। ततः शब्दा-
दिपञ्चकमाकाशादिपञ्चकमिन्द्रियदशकमन्तःकरणं चाहङ्कारो भूत्वा
सृजति। तत्र प्रथममिच्छाज्ञानक्रियाशक्त्यात्मकं मनोबुद्ध्यहङ्काराख्य-
मन्तःकरणं, ततो ज्ञानक्रियासाधनानि करणानि, ततो ज्ञेयं कार्यं च

१, २. 'भावेन हे' ख. पाठः. ३. 'दमपि नि' क. पाठः.

शब्दादिपञ्चकं, ततस्तदाश्रयभूतमाकाशादिपञ्चकं च सृजति। एवं सृष्टानि महदादीनीश्वरेच्छया कालक्रमेणान्योन्यं मिलित्वा हैमं ब्रह्माण्डमुत्पादयन्ति। तस्मिंश्च कारणोदकशायिनि तदनुप्रवेशात् परिपक्वे विभिन्ने च सहस्रशीर्षादिमान् पुरुषो भवति। तस्य नाभिपद्माद्धिरण्यगर्भः। स चतुर्दश भुवनानि तद्गतानि जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जभेदेन चतुर्विधानि भूतानि च सृष्ट्वा तेष्वनुप्रविष्टः स्वमायया कालादिसङ्कोचं प्राप्तः पशुर्भवति। यः सुरोऽसुरो नरो नारकी इति चोच्यते। स च देहादिसङ्कोचमितस्तत्कृतपुण्यापुण्याभ्यामूर्ध्वं चाध इहलोके च भ्रमति। तस्य देहोद्भवहेतवो महदादय एव। अतो यदासौ संसारादुद्विग्नस्तत्त्वज्ञं गुरुवरमुपगम्य तस्मान्मन्त्रदीक्षां प्राप्य स्वात्मानमेव परमेश्वरमुपास्ते, तदा तत्प्रसादात् पिण्डमण्डेऽण्डं भूमौ भूमिमप्सु अम्भांसि तेजसि तद् वायौ तमाकाशे तमहङ्कारे तं महति तं प्रकृतौ प्रकृतिं मायायां तां च सकार्यां विद्यायां तामीश्वरे तं सदाशिवे तमपि शिवशक्त्यात्मके तत्त्वे संहृत्याहं विश्वस्रष्टा ब्रह्मा पालको विष्णुः संहर्ता रुद्रः तिरोधायक ईश्वरः सर्वानुग्राहकः सदाशिवः सृज्यादिपदस्थाः सर्वे देवासुरादयश्चाहमेव न कालत्रयेऽपि मत्तोऽन्यत् तत्त्वान्तरमस्ति। अहं च सदानन्दचिद्घनापघनः परशक्तिपरिरम्भितः परमशिव एव, न पुनर्मनुष्याभास इति साक्षादीक्षते, तदा परा शक्तिः रूपान्तरमपहाय परमशिवसामरस्यं गता तत्रैव रमते। पुमांश्च मुक्तो भवति। सेयं बन्धावस्था मोक्षावस्था चात्र प्रकाशितेति शिवम्॥ १५॥

एवं शब्दार्थमयप्रपञ्चोत्तीर्णं देव्याः परं रूपं तत्त्वज्ञानार्थमुपदिश्य इदानीमुपासनार्थमपरं रूपमुपदिशति —

**देवानां त्रितयं त्रयी हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वरा-**
**स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः।**
**यत्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमितं वस्तु त्रिवर्गात्मकं**
**तत् सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः॥ १६॥**

१. 'चि' क. पाठः,

देवानां त्रितयं त्रयीति । हे भगवति !

"ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥"

एतदैश्वर्यादिषट्कं यस्यां सदा सामस्त्येन वर्तते, सा भगवती, तस्याः सम्बोधनं तथा । यत्किञ्चिज्जगति त्रिधा नियमितं कल्पितं त्रिवर्गात्मकं स्वतस्त्रिरूपं वा वस्तु तत्सर्वं ते त्रिपुरेति नाम, तत्त्वतः तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् तद्रूपत्वाद् भवत्या अन्वेति अनुगच्छति वक्तीति यावत् । तदेवाह — देवानामित्यादिना । देवानां वसुरुद्रादित्यानाम् , अग्निवायुसूर्याणां, ब्रह्मविष्णुरुद्राणां वा त्रितयम् । हुतभुजां, गार्हपत्यान्वाहार्याहवनीयाग्नीनां भौमजाठरवडवामुखाग्नीनां वा त्रितयं । त्रयी त्रयो वेदाः । शक्तित्रयम् इच्छाज्ञानाक्रियात्मकम् । त्रिस्वराः उदात्तानुदात्तस्वरिताः । त्रैलोक्यं भूर्भुवःस्वर्लोकाः । त्रिपदी गायत्री । त्रिपुष्करं त्रयाणां देवर्षिपितॄणां पुष्टं पुष्टिं तृप्तिं करोतीत्युपवीतम् । त्रिब्रह्म त्रिरूपं ब्रह्म प्रणवः, आत्मान्तरात्मपरमात्मानो वा । 'मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्' इति भगवद्वचनात् । सत्त्वादिगुणभेदेन त्रिधा स्थिता वा प्रकृतिस्त्रिब्रह्म । त्रयो वर्णास्तारगता एतन्मन्त्रगता वा । अ-इ-उ-वर्णा वा लिपिगताः स्वरव्यञ्जनव्यापकार्णा वा श्वेतरक्तकृष्णा वा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्या वा । किं बहुना, यत्किञ्चिद् जगति त्रिधा नियमितं त्रिवर्गात्मकं वा तत्सर्वं ते त्रिपुरेति नाम तत्त्वतोऽन्वेतीति योज्यम् । यत्किञ्चिच्छब्देन धर्मादित्रिकं जाग्रदादित्रिकं मातरादित्रिकं सुषुम्नादित्रिकं व्याहृतित्रिकं कालत्रिकं पुरुषत्रिकं लिङ्गत्रिकं वचनत्रिकं कारणत्रिकं तेजआदित्रिकमित्यादि गृह्यते । तदेवं शब्दार्थात्मकं तत्कारणत्वादुभयोत्तीर्णं स्वप्रकाशाखण्डानन्दसंविद्रूपं च देव्याः परापररूपमिह द्वाभ्यां श्लोकाभ्यां प्रकाशितमिति शिवम् । एवं त्रिपुराशब्दार्थमन्त्रदेवतातत्त्वमिह सङ्ग्रहविस्तराभ्यामादित आरभ्य गतग्रन्थेन कथितम् । तच्च चतुर्विधपुरुषार्थार्थिनां स्त्रीपुरुषभेदेन सर्वेषां वर्णानां बोध्यम् एकैकबीजस्यापि महाफलत्वात्

१. 'वानाम् ऋषीणां पि', २. 'संव्यम्' ख. पाठः.

पृथङ्मन्त्रत्वाच्च सुसेव्यमिति चोक्तम्। विहितद्रव्यालाभेन पूजा नक्ष नापि त्याज्येति द्रव्याणि च बहून्युपदिष्टानि। तेषु क्षीराज्येति पाठेन क्षीरस्य मुख्यत्वं, विप्राः क्षोणिभुज इति ब्राह्मणस्यार्चकेषु मुख्यत्वं चाभ्यर्हितं पूर्वं निपततीति न्यायात् प्रकाशितम्। भक्ष्यभोज्यलेह्यपेयेषु शिवाया अर्चने पेयद्रव्यस्य प्राधान्यमन्यस्य तच्छेषत्वमिति च द्रवद्रव्याणामेव ग्रहणात् तर्पणशब्दाच्च व्यञ्जितम्।

"कुङ्कुमागरुकर्पूररोचनाकपिचन्दनम्।
कचोरसान्वितं शक्तेर्ग्राह्यं गन्धाष्टकं बुधैः॥"

एतच्च बिल्वीदलेति पुष्पग्रहणेन सर्वत्र सहपाठादुपसंगृहीतमार्यैः॥१६॥

अथ परापरेति शिवशक्त्यात्मकस्य सविभूतिकस्य ब्रह्मणः परशब्देन नाममन्त्रप्रवाहात्मनोऽपरस्य ब्रह्मणश्च परशब्देन ग्रहणान्मन्त्रेषु त्रिपुराशब्दार्थभूतमन्त्राणामेव प्रकाशितत्वाद्, नामसु चास्य त्रिपुरानाम्न एव प्राधान्येनोक्तत्वात् सगुणपक्षे देव्या विभूतिभेदानामनुक्तत्वाच्च नानाकार्यार्थिभिः सेव्यानि देव्या नामानुरूपाणि चाविष्कुर्वंस्त्रिपुरानाम्न एवासाधारणं फलं तावदाह—

लक्ष्मीं राजकुले जयां रणमुखे क्षेमङ्करीमध्वनि
क्रव्याद्द्विपसर्पभाजि शबरीं कान्तारदुर्गे गिरौ।
भूतप्रेतपिशाचजम्भकभये स्मृत्वा महाभैरवीं
व्यामोहे त्रिपुरां तरन्ति विपदस्तारां च तोयप्लवे॥१७॥

लक्ष्मीं राजकुल इत्यादि। भगवतीत्यनुषज्यते। त्वां राजकुले वर्तमानास्तदुचितोपकरणपरिजनभवनादिविहीनाः सर्वस्यैतस्य सत्त्वेऽपि प्रबलतरैः प्रतिराजन्यैः पीड्यमाना वा लक्ष्मीं महालक्ष्मीं[1] त्वां तन्नाम्ना स्मृत्वा विपदो दुःखानि तरन्ति त्यजन्ति। रणमुखे वर्तमानाः प्रतियोद्धृभिर्बाध्यमानाः जयां जयादेवीं त्वां तन्नाम्ना स्मृत्वा विपदस्तरन्तीत्यन्वयः। क्रव्याद्द्विपसर्पभाजि क्रव्यादाः वृकव्याघ्रादयः द्विपा

१. 'क्ष्मीरूपां त्वां' ख. पाठः.

गजाः सर्पाश्च तैर्युक्तेऽध्वनि क्षेमङ्करीं देवीं त्वां तन्नाम्नानुस्मृत्य । कान्तारदुर्गे गिरौ दुर्गमं वर्त्म कान्तारं तेन दुर्गे दुरारोहे गिरौ । शबरीं शबरीरूपिणीं त्वां तन्नाम्ना स्मृत्वा । भूतप्रेतपिशाचजम्भकभये भूता रुद्रपार्षदाः, प्रेताः पिशाचाः, जम्भका राक्षसाश्च तेभ्यो भये जाते महाभैरवीं त्वां तन्नाम्ना स्मृत्वा । व्यामोहे बुद्धिभ्रमे जाते त्रिपुरां त्वां तन्नाम्ना स्मृत्वा । तोयप्लवे तोये प्लवं प्लवनं मज्जनं तस्मिन् प्राप्ते तोयराशिमध्यस्थे प्लवे नौकायां वर्तमाना वा तारां त्वां तन्नाम्ना स्मृत्वा विपदस्तरन्ति । एतेषां सप्तनाम्नां जपप्रकारमुत्तरत्र स्पष्टीकरिष्यामः ॥ १७ ॥

अथ देव्या मन्त्रपारायणात्मकमपरं रूपमाह —

**माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी**
**मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी ।**
**शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी**
**ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि ॥ १८ ॥**

मायाकुण्डलिनीति । भगवतीत्यत्राप्यनुषज्यते । मायादिकुमारीत्येतदन्तं[1] यच्छब्दरूपं, तत्सर्वं त्वमसीत्यन्वयः । ह्रींकारो माया, ऐङ्कारः कुण्डलिनी, क्लींकारः क्रिया, मधुमती मातृका शुद्धा सबिन्दुका सविसर्गा च । काली कला मालिनी मातङ्गी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी इति दश नामानि । शक्तिः श्रीबालातृतीयबीजम् । शङ्करवल्लभा रुद्रशक्तिः । हकारसकाराभ्यां सहिता सदा-हस्थिता च त्रिपुराविद्या यदा द्वितीयबीजे निष्कला भवति । (भोजे ?) तदा ह्सी इति साप्युद्धृता स्यात् । त्रिनयना कामबीजं मणिजम् अक्षिषु नेत्रस्थानेऽस्य भावात् । वाग्वादिनी वागीश्वरी सा तूद्धृतैव 'शब्दानां जननी त्वमि'त्यत्र भैरवी पञ्चकूटकं, तदुद्धृतमेव । ह्रींकारी भुवनाधिपतिबीजं स्वरूपेणैवोद्धृतम् । त्रिपुरा श्रीसौभाग्यविद्या । परापरमयी शिवशक्तिमन्त्रः, मध्यमचतुष्कूटत्रिपुराश्रीमन्त्रतृतीयबीजत्वात् सोऽप्यु-

---

१. 'त्येतदन्त' क. ग. पाठः. २. 'ह्रीं इ' क. पाठः.

द्धृतः । माता श्रीमद्द्वादशार्धविद्या, साप्याद्यावुद्धृता । कुमारी बाला, सा प्रत्यक्षत एवोद्धृता । यद्यपि प्राक् सौभाग्यविद्या नोद्धृता, तथाप्यस्मिञ्छ्लोक एव सा प्रकाशिता । कथम् । माया ह्रींकारीति द्विरुक्त्या भुवनाधिपतिबीजस्य, क्रिया त्रिनयनेति कामबीजस्य च द्विरुक्तिरावृत्तिं द्योतयति । परापरमयीति हसौ च गृहीतौ । त्रिरुक्तौ हसाभ्यां सहितौ च माया कामार्णौ च केवलं सौभाग्यविद्या । कुण्डलिनीति शब्दादेकारोऽपि गृहीतः, ऐकारे तस्यान्तर्भावात्, एकारस्यावर्णेन वृद्धियोगादैकारोत्पत्तिरिति । अथवा आद्यश्लोक एव साप्युद्धृता । कथं, षट्कूटस्योद्धृतत्वात् विद्यामन्त्राक्षराणां सर्वेषां तत्रान्तर्भावाच्च प्रायेण सर्वे मन्त्रा अस्यामेवाविर्भवन्तीत्याशयेन च मातृशब्दोऽस्यां प्रयुक्तः । एतद्देवतायास्त्रिपुराम्बिकाभिधानत्वाच्च । एवं दश मन्त्राश्चोक्ताः । एतेषां परस्परयोगान्मन्त्रपारायणं भवति । तद्यथा — ह्रीं अ काली सौः अयमादिमो मन्त्रः । अस्मिंस्त्रिषु बीजेषु आद्यं बीजं चतुर्विधमातृकाशुद्धाद्याक्षरं दशसु नामस्वाद्यं नाम दशसु मन्त्रेष्वाद्यो मन्त्रश्च भवति । एवं ह्रीं आ काली सौः इत्यादिं शुद्धायां मातृकायां पञ्चाशन्मन्त्राः ह्रीं क्ष काली सौः इत्येवमन्ताः । तथा ह्रीं अं काली सौः इत्यादिसबिन्दुकायां च पञ्चाशत् । ह्रीं अः काली सौः इत्यादिसविसर्गायां पञ्चाशत् । ह्रीं अः काली सौः इत्यादिसबिन्दुगर्भायां च पञ्चाशत् । ह्रीं अः काली सौः इत्यादिबिन्दुविसर्गान्वितायां च पञ्चाशत् । इत्थं द्विशतं मन्त्राः । मायाबीजस्थाने वाग्भवबीजं योजयित्वान्यत् सर्वं पूर्ववदेव कृत्वा च द्विशतम् । पुनस्तृतीयं कामबीजमादौ कृत्वान्यत् सर्वं प्राग्वदेव कृत्वा च द्विशतमिति षट्छतं मन्त्राः । पुनः कालीनामस्थाने कलानाम कृत्वान्यत्सर्वं प्राग्वदेव कृत्वा च षट्छतम् । एवं प्रतिनामेति षट्सहस्रभेदाः । पुनराद्यस्य शक्त्याख्यस्य मन्त्रस्य स्थाने शङ्करवल्लभां योजयित्वान्यत्सर्वं प्राग्वदेव कृत्वा च

---

१. 'द्या' क. पाठः. २. 'वृत्तः । ए' ख. पाठः. ३. 'देविका' क. पाठः. ४, ५. 'ग्वत् कृ' ख. पाठः.

षट्सहस्रं ह्रीं अ काली ह्स्री इत्यादि । एवं प्रतिमन्त्रमिति षष्टिसहस्रं मन्त्रा भवन्तीति । अथापरः प्रकारः बीजत्रयचतुर्विधमातृकायोजनया कालीनाम्नि षट्शतमन्त्रेषु सम्भूतेषु तस्मिन्नाम्नि स्थित एव मन्त्रेषु द्वितीयस्य योजनायामपि षट्शतं मन्त्राः । एवं तृतीयादिमन्त्रयोजनायामपि प्रत्येकं षट्शतमिति सर्वमन्त्राणां कालीनाम्ना योजने षट्सहस्रवाचकाः । एवं कलादिनामभिर्योजनेऽपीत्यत्रापि षष्टिसहस्रं मन्त्राः स्युः । पूर्वश्लोकोक्तलक्ष्म्यादिनाम्नामप्यनया रीत्या जपः कार्यः, ह्रीं अ लक्ष्मी सौः इत्यादि । तत्रापि प्रतिनाम दशानां मन्त्राणां योजने द्विचत्वारिंशत्सहस्रं मनवो भवन्ति । तथाच लक्षादुपरिद्विषष्टिसहस्रं मन्त्रपारायणं भवतीति शिवम् ॥ १८ ॥

अथ नामपारायणमाह —

**आईपल्लवितैः परस्परयुतैर्द्वित्रिक्रमादक्षरैः**
**काद्यैः क्षान्तगतैः स्वरादिभिरथ क्षान्तैश्च तैः सस्वरैः ।**
**नामानि त्रिपुरे! भवन्ति खलु यान्यत्यन्तगुह्यानि ते**
**तेभ्यो भैरवपत्नि! विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो नमः ॥ १९ ॥**

आईपल्लवितैरिति । हे भैरवपत्नि! सर्वद्वैतप्रपञ्चघस्मरज्योतीरूपो महेश्वरो भैरवस्तस्य स्वभावभूता तदेकाश्रया तस्मिन्नेव रममाणा च पराशक्तिसंज्ञा स्फुरत्ता भैरवपत्नी, तस्याः सम्बोधनं तथा । आईपल्लवितैः आ ई इति शब्दशिरस्कैः काद्यैः क्षान्तगतैः कादिक्षान्तगैः पञ्चत्रिंशदक्षरैर्यानि तेऽत्यन्तगुह्यानि नामानि भवन्ति, विंशतिसहस्रेभ्यः परेभ्यो विंशतिसहस्रादुपरि षष्टिशतसंख्येभ्यः तेभ्यो नमः । त्वन्नाम्नामपि तावन्नमस्कार्यत्वं, ध्यानेन विनापि जप्तुः फलप्रदत्वात् । किं पुनर्नामधेनाया भवत्या इत्यर्थः । कथम्भूतैः अक्षरैः स्वरादिभिः क्षान्तगतैः षोडशधा भिन्नं स्वरमादिं कृत्वा क्षकारपर्यन्तं गतैः द्वित्रिक्रमाद् द्वित्रिवर्णक्रमात्परस्परयुक्तैश्च, अ का ई इत्यादि अः का ई इत्यन्तम्, एवं अ खा ई अ गा ई अ घा ई इत्यादि, अः क्षा ई इत्य-

१. 'री' ख, पाठः. २. 'तच' क. पाठः. ३. 'पि न', ४. 'ध्या' ख. पाठः.

न्तं जपेत् । षट्षष्ट्युत्तरं पञ्चशतं मन्त्राः स्युः । अथ सस्वरैश्च तैः क. का. कि. की. इत्यादिरूपैः तेषामेव पञ्चत्रिंशद्वर्णानां योजने प्रत्येकं षष्ट्युत्तरं पञ्चशतं मन्त्रा भवन्ति । ककाई काकाई इत्यादि कखाई काखाई इत्यादि कक्षाई काक्षाई इत्यादि कः क्षाई इत्यन्तम् । एवं खकाई इत्यादि खः क्षाई इत्यन्तम् । तथा गकाई इत्यादि गः क्षाई इत्यन्तम् । अवसाने क्षकाई क्षःकाई इत्यन्तम् । एवं नामपारायणक्रमपि देव्या अपरं रूपमाविष्कृतमिति शिवम् ॥ १९ ॥

एवं स्तुतिमुपसंहृत्यास्याः सद्भिरभ्यसनीयत्वमाह —

**बोद्धव्या निपुणं बुधैः स्तुतिरियं कृत्वा मनस्तद्गतं**
**भारत्यास्त्रिपुरेत्यनन्यमनसो यत्राद्यवृत्ते स्फुटम् ।**
**एकद्वित्रिपदक्रमेण कथितस्तत्पादसंख्याक्षरै-**
**र्मन्त्रोद्धारविधिर्विशेषसहितः सत्सम्प्रदायान्वितः ॥२०॥**

बोद्धव्या निपुणमिति । अत्रापि भैरवपत्नीत्येतदनुपज्यते । देवताया गुणप्रवाहवर्णनेनाहो अहम् अहो अहमित्यात्मन्याश्चर्यबुद्धिजननी स्तुतिः। त्रिपुरेति प्रसिद्धाया भारत्यास्तवेयं स्तुतिः बुधैर्विवेकिभिः तद्गतं तस्यां भारत्यां त्वयि गतं मनः कृत्वा निपुणं बोद्धव्या सम्यग्धारयितव्या । तत्र त्रिपुराभारतीविषयत्वं तावदेको हेतुः । हेत्वन्तरमाह — यत्र यस्यां स्तुतावनन्यमनसः नान्यत्र मनो यस्य किन्तु त्वय्येव, तस्य पुंसस्तं प्रति आद्यवृत्ते प्रथमश्लोके तत्पादसंख्याक्षरैः तस्य पादसंख्यया समानसंख्यैरक्षरैः । इत्थम्भावे तृतीया । समानसंख्याक्षरत्वेन एकद्वित्रिपदक्रमेण प्रथमद्वितीयतृतीयपादक्रमेण मन्त्रोद्धारविधिः कथितः कृतः । प्रथमपादे प्रथमाक्षरत्वेन द्वितीयपादे द्वितीयाक्षरत्वेन तृतीयपादे तृतीयाक्षरत्वेन च यत्र श्रीबालामन्त्र उद्धृत इत्यर्थः। कथम्भूतः विशेषसहितः त्रिपुरामन्त्रविशेषैः सहितः, विशेषाः तस्मिन् कथञ्चिदुद्धृता इत्यर्थः । स्फुटमिति प्रत्यक्षतं उद्धृत इत्यर्थः

— १. 'न्तम् । एवं' क. पाठः. २. 'न य', ३. 'रसुद्गृ' ख. पाठः.

सत्सम्प्रदायान्वित इति सन् निर्दोषश्चासौ सम्प्रदाय उपदेशपरम्परा च सत्सम्प्रदायः, तेनान्वितो युक्तः। गुरुवरोपदेशपरम्परया मया प्राप्तो नाधुना क्लृप्तः, येन पौरुषेयतयाप्रामाण्यशङ्का स्यात्। सम्प्रदायप्राप्ता एव मन्त्रा अत्रास्माभिरुद्धृता इत्यर्थः। अवहितचित्तेनैव हि सर्वं ज्ञातुं पार्यत इत्यनन्यमनसः कथित इत्युक्तम्। अथवा न भारत्या अन्यः कश्चिदहं, किन्तु सैवेति मनो यस्य सोऽनन्यमनाः, तस्य मम सम्बन्धिनीं, तथाभूतेन मया कृतामित्यर्थः। तेन कर्तृतो विषयतः स्वरूपतश्च शुद्धत्वमस्या इत्यवश्यमादरणीयत्वं विद्वद्भिरित्युक्तं भवतीति शिवम्॥ २०॥

ननु निर्दोषत्वेऽपि शब्दालङ्कारभूयिष्ठत्वाभावाच्छृङ्गारादिरससुधापात्रत्वाभावाच्च न रसिकैरभ्यसनीयत्वमस्या इति चेद्, मा भवतु तैरादरणीयम्। तथापि परदेवताभक्तिप्रधानत्वात् तद्बलेनैव मत्तः सम्भूतत्वाच्च देवताभक्ता अवश्यमिमामङ्गीकुर्युः। अतः सफलैवेयं स्तुतिरित्याह—

**सावद्यं निरवद्यमस्तु यदि वा किं वानया चिन्तया**
**नूनं स्तोत्रमिदं पठिष्यति जनो यस्यास्ति भक्तिस्त्वयि।**
**सञ्चिन्त्यापि लघुत्वमात्मनि दृढं सञ्जायमानं हठात्**
**त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन रचितं यस्मान्मयापि ध्रुवम्॥**

सावद्यं निरवद्यमित्यादिना। भैरवपत्नि! त्रिपुरे! इति सम्बोधनमत्रापि ग्राह्यम्। इदं सावद्यं सदोषं यदि वा निरवद्यं निर्दोषमस्तु। सालङ्कारत्वसरसत्वाभावदोषयुक्तं तद्विहीनं वा, भवतु, अनया चिन्तया किं वा, न किमपि प्रयोजनम्। कुतः, यस्य त्वयि भक्तिरस्ति, स जन इदं स्तोत्रं पठिष्यति। नूनं निश्चितमेतत्। तदपि कुतः। यस्मादात्मनि मयि भवत्याः स्तोत्ररचनोद्यते। अतो हेतोः सञ्जायमानमशक्यार्थकरणोद्यमात्तदेव मय्युत्पद्यमानं लघुत्वमाभासबुद्धित्वं दृढं संचिन्त्य निश्चयेनावगम्य तूष्णीमासीनेनापि। त्वद्भक्त्या त्वयि या भक्तिर्निरतिशयप्रीतिरूपिणी तया

१. 'त्रतन्त्रर' ख. पाठः.

मुखरीकृतेन वाचालतां नीतेन प्रवर्तितवाक्प्रसरेण मयाल्पश्रुतेना
हठाद् वेगेनाबुद्धिपूर्वमेव ध्रुवं निर्बाधमिदं रचितम्। निर्बाधमिति
लङ्कारत्वसरसत्वाभावदोषोऽपि विचारदशायां नास्मिन् स्तोत्रे
मस्ति। कुतः। 'स एष रसानां रसतम' इति मुख्यरसत्वेन श्रुतौ
तस्य शिवशक्त्यात्मकस्य तत्त्वस्याखण्डानन्दसंविद्रूपस्य तद्भक्तिरस
च सर्वत्रात्र प्राधान्येन व्यञ्जितत्वाद् अन्येषामपि रसानां यथाय
मेतदङ्गतयालङ्कारत्वेन व्यञ्जितत्वाच्च। 'दृष्ट्वा सम्भ्रमे'त्यद्भुतस्य,
न्नित्ये! तवे'ति करुणस्य, विरलो बालकोऽपि बुध इत्युक्तेः, 'यत्
वचसामि'ति चाद्भुतस्य, औकारस्य गकारसाहित्ये सरस्वती
कत्वं तद्राहित्ये तन्मन्त्रत्वमित्युक्तेः, 'एकैकं तवे'त्यद्भुतस्य, 'वा
स्तके'ति शान्तस्य, 'ये त्वां पाण्डरे'त्यद्भुतस्य, 'ये सिन्दूरे'ति
प्रलम्भशृङ्गारस्य, 'चञ्चत्काञ्चने'ति शृङ्गाराद्भुतयोः पूर्वापरार्धाभ्या
'आर्भट्ये'ति सम्भोगशृङ्गारशान्तयोः, 'जातोऽपी'त्यद्भुतवीरयो
'चण्डि! त्वच्चरणाम्बुजे'ति भयानकस्य, 'विप्राः क्षोणिभुज' इति
रुणस्य, सर्ववर्णाश्रमिणां स्त्रीपुरुषाभेदेन येन केनापि यथाल
द्रव्येणाभ्यर्चिता भगवती तं तं काममनुगृह्णातीति परमकारुण्यप्रती
'शब्दानां जननी'त्यद्भुतभयानकयोः पूर्वापरार्धाभ्यां, 'देवानां
यमि'त्यप्यद्भुतस्य, त्रिपुरानाम्नः सर्वार्थकवलनशक्तिप्रकारस्या
ष्कृतत्वात्, 'लक्ष्मीं राजकुले' इति भयानकस्य, 'माया कुण्डलि
त्यन्तयोराद्ये च भाव एव, न पुना रसान्तरमत्रास्ति। भक्तिरसे
पक्रम्य तेनैवोपसंहारे तत्रैवास्य तात्पर्यमिति च प्रत्यायितं भवति।
सश्लोकादिषूपमालङ्कारोऽपि क्वचित् क्वचिद् भवति, अनुप्रास
मार्यादयः शब्दालङ्काराश्च भवन्ति। गूढयोजनत्वगूढवर्णत्वादि
चित्रकाव्यता च विस्पष्टा विपश्चितामिति। तदेवं निर्दोषत्वात्
णत्वात् सरसत्वाच्च सर्वैः पठनीयमेतदिति सिद्धम्। यद्वा अना
गुरुपरम्पराप्राप्तत्वेन नित्यत्वादपौरुषेया इतीहोपदिष्टा मन्त्राः स्व
प्रमाणत्वेन ग्राह्याः। इदं स्तोत्रं त्विदानीं त्वयोक्तमिति पौरुषेयत्वा

१. 'क्तः' क. पाठः.

न प्रामाण्यनिर्णयः, तन्निर्णये वा न स्वतःप्रामाण्यनिश्चयः, येन सर्वे जना इदमङ्गीकुर्युरित्यत्राह — सावद्यमिति । अवद्यं दोषोऽप्रामाण्यं, तेन सह वर्तत इति सावद्यम् । यदि वा निरवद्यमिदमस्तु । अनया चिन्तया किं वा । नैषा चिन्ता कार्येत्यर्थः । कुत इत्यत आह— नूनमिति । यस्य त्वयि भक्तिरस्ति, आस्तिकपक्षपतितो भवति यः, स जन इदं स्तोत्रं पठिष्यति । नूनं तस्यैतत् स्वतःप्रमाणमेव भवतीत्यर्थः । तदेवोपपादयति — आत्मनि सञ्जायमानं लघुत्वं सञ्चिन्त्यास्माभिरशक्यक्रियोऽयमर्थ इति रचनोद्योगान्निवृत्तेनाल्पज्ञेन मयापि त्वद्भक्त्या मुखरीकृतेन त्वत्सेवनेन स्वात्मतयाविर्भूतया त्वया प्रबोधितबुद्धितत्त्वेनात एवाविर्भूतवाक्प्रसरेण च हठादक्लेशेन ध्रुवं नित्यमेवेदं रचितमाविष्कृतं न पुनरिदानीन्तनास्मद्बुद्धिविलाससम्भूतम् । तेन स्वतःप्रमाणमेवेदमागमयितव्यं विद्वद्भिरित्यर्थः । कर्त्रा स्वात्मनि लघुशब्दः प्रयुक्त इति लघुस्तुतिरित्यस्या लोके प्रसिद्धिः प्रवृत्तेति ज्ञेयम् । क्षिप्रकरणाद्वा, अर्थतो बहुत्वेऽपि विंशतिश्लोकमितत्वेन वा लघुस्तुतिः । लघो ऋँज्व्या भक्तानामवञ्चयित्र्या देव्याः स्तुतिर्वा लघुस्तुतिः ॥२१॥

एवमेकाधिकश्लोकविंशत्या शारदास्तुतिः ।  
लघुभट्टारकैः क्लृप्ता भक्तानां भुक्तिमुक्तिदा ॥

कृष्णानन्दमुनीश्वरस्य कृपया तुर्याश्रमं योऽश्रमं  
प्राप्याम्नायशिरोऽधिरूढमवगम्यात्मानमप्यात्मना ।  
आसाद्यापि च पद्धतिं शिवमयीमानन्दनाथाद् गुरो-  
रानन्दान्तिकराघवो मुनिरगात् तृप्तिं स वृत्तिं व्यधात् ॥

कृष्णस्त्रिलोचन इति त्रिपुरेन्दिरेति  
ब्रह्मेति वा यदुदितं परतत्त्वमेकम् ।  
सच्चित्सुखैकतनवे प्रणतोऽस्मि तस्मै  
सर्वात्मने सकलबन्धविदारणाय ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

---

शुभं भूयात् ।

---

१. 'द्यमप्रा' ख. पाठः. २. 'ऋद्धया भ' ख. पाठः.

## READY FOR SALE.

| | RS. | AS. | P. |
|---|---|---|---|
| भक्तिमञ्जरी (Stuti) by H. H. Svâti Sri Râma Varma Mahârâjah. | 1 | 0 | 0 |

## Trivandrum Sanskrit Series.

| | | | |
|---|---|---|---|
| No. 1—दैवम् (Vyâkarana) by Deva with Purushakâra of Krishnalîlâsukamuni. | 1 | 0 | 0 |
| No. 2—अभिनवकौस्तुभमाला-दक्षिणामूर्तिस्तवौ by Krishnalîlâsukamuni. | 0 | 2 | 0 |
| No. 3—नलाभ्युदयः (Kâvya) by Vâmana Bhatta Bâna. | 0 | 4 | 0 |
| No. 4—शिवलीलार्णवः (Kâvya) by Nîlakantha Dîkshita | 2 | 0 | 0 |
| No. 5—व्यक्तिविवेकः (Alankâra) by Mahima Bhatta with commentary. | 2 | 12 | 0 |
| No. 6—दुर्घटवृत्तिः (Vyâkarana) by Saranadeva. | 2 | 0 | 0 |
| No. 7—ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिका (Vedânta) by Sadâsivendra Sarasvatî | 2 | 4 | 0 |
| No. 8—प्रद्युम्नाभ्युदयम् (Nâtaka) by Ravi Varma Bhûpa | 1 | 0 | 0 |
| No. 9—विरूपाक्षपञ्चाशिका (Vedânta) by Virûpâkshanâtha with the commentary of Vidyâchakravartin. | 0 | 8 | 0 |
| No. 10—मातङ्गलीला (Gajalakshana) by Nîlakantha. | 0 | 8 | 0 |
| No. 11—तपतीसंवरणम् (Nâtaka) by Kulasekhara Varma with the commentary of Sivarâma. | 2 | 4 | 0 |
| No. 12—परमार्थसारम् (Vedânta) by Bhagavad Âdisesha with the commentary of Râghavânanda. | 0 | 8 | 0 |
| No. 13—सुभद्राधनञ्जयम् (Nâtaka) by Kulasekhara Varma with the commentary of Sivarâma | 2 | 0 | 0 |

| | RS. | AS. | P. |
|---|---|---|---|
| No. 14—नीतिसारः (Nîti) by Kâmandaka, with the commentary of Sankarârya. | 3 | 8 | 0 |
| No. 15—स्वप्नवासवदत्तम् (Nâtaka) by Bhâsa. (Second Edition) | 1 | 8 | 0 |
| No. 16—प्रतिज्ञायौगन्धरायणम् (Nâtaka) by Bhâsa. | 1 | 8 | 0 |
| No. 17—पञ्चरात्रम् Do. Do. | 1 | 0 | 0 |
| No. 18—नारायणीयम् (Stuti) by Nârâyana Bhatta with the commentary of Desamangala Vârya. | 4 | 0 | 0 |
| No. 19—मानमेयोदयः (Mîmâmsâ) by Nârâyana Bhatta and Nârâyana Pandita. | 1 | 4 | 0 |
| No. 20—अविमारकम् (Nâtaka) by Bhâsa. | 1 | 8 | 0 |
| No. 21—बालचरितम् Do. Do. | 1 | 0 | 0 |
| No. 22—मध्यमव्यायोग-दूतवाक्य-दूतघटोत्कच-कर्णभारोरुभङ्गानि (Nâtaka) by Bhâsa. | 1 | 8 | 0 |
| No. 23—नानार्थार्णवसंक्षेपः (Kosa) by Kesavaswâmin (Part I, 1st & 2nd Kândas) | 1 | 12 | 0 |
| No. 24—जानकीपरिणयः (Kâvya) by Chakrakavi. | 1 | 0 | 0 |
| No. 25—काणादसिद्धान्तचन्द्रिका (Nyâya) by Gangâdharasûri. | 0 | 12 | 0 |
| No. 26—अभिषेकनाटकम् (Nâtaka) by Bhâsa. | 0 | 12 | 0 |
| No. 27—कुमारसम्भवः (Kâvya) by Kâlidâsa with the two commentaries, Prakâsikâ of Arunagirinâtha and Vivarana of Nârâyana Pandita (Part I, 1st & 2nd Sargas) | 1 | 12 | 0 |
| No. 28—वैखानसधर्मप्रश्नः (Dharmasûtra) by Vikhanas. | 0 | 8 | 0 |
| No. 29—नानार्थार्णवसंक्षेपः (Kosa) by Kesavaswâmin (Part II, 3rd Kânda) | 2 | 4 | 0 |
| No. 30—वास्तुविद्या (Silpa) | 0 | 12 | 0 |
| No. 31—नानार्थार्णवसंक्षेपः (Kosa) by Kesavaswâmin (Part III, 4th, 5th & 6th Kândas) | 1 | 0 | 0 |

| | RS. | AS. | P. |
|---|---|---|---|
| No. 32—कुमारसम्भवः (Kâvya) by Kâlidâsa with the two commentaries, Prakâsikâ of Arunagirinâtha and Vivarana of Nârâyana Pandita (Part II, 3rd, 4th & 5th Sargas) | 2 | 8 | 0 |
| No. 33—वाररुचसंग्रहः (Vyâkarana) with the commentary Dîpaprabhâ of Nârâyana | 0 | 8 | 0 |
| No. 34—मणिदर्पणः (शब्दपरिच्छेदः) (Nyâya) by Râjachûdâmanimakhin. | 1 | 4 | 0 |
| No. 35—मणिसारः (अनुमानखण्डः) (Nyâya) by Gopînâtha. | 1 | 8 | 0 |
| No. 36—कुमारसम्भवः (Kâvya) by Kâlidâsa with the two commentaries, Prakâsikâ of Arunagirinâtha and Vivarana of Nârâyana Pandita (Part III, 6th, 7th & 8th Sargas) | 3 | 0 | 0 |
| No. 37—आशौचाष्टकम् (Smriti) by Vararuchi with commentary. | 0 | 4 | 0 |
| No. 38—नामलिङ्गानुशासनम् (Kosa) by Amarasimha with the commentary Tikâsarvasva of Vandyaghatiya Sarvânanda (Part I, 1st Kânda) | 2 | 0 | 0 |
| No. 39—चारुदत्तम् (Nâtaka) by Bhâsa. | 0 | 12 | 0 |
| No. 40—अलङ्कारसूत्रम् (Alankâra) by Râjânaka Sri Ruyyaka with the Alankârasarvaswa of Sri Mankhuka and its commentary by Samudrabandha. | 2 | 8 | 0 |
| No. 41—अध्यात्मपटलम् (Kalpa) by Âpastamba with Vivarana of Sri Sankara Bhagavat Pada. | 0 | 4 | 0 |
| No. 42—प्रतिमानाटकम् (Nâtaka) by Bhâsa. | 1 | 8 | 0 |
| No. 43—नामलिङ्गानुशासनम् (Kosa) by Amarasimha with the two commentaries, Amarakosodghatana of Kshîraswamin and Tîkasarvaswa of Vandyaghatiya Sarvananda (Part II, 2nd Kanda 1-6 Vargas) | 2 | 8 | |

| | RS. | AS. | P. |
|---|---|---|---|
| No. 44—तन्त्रशुद्धम् (Tantra) by Bhattâraka Srî Vedottama. | 0 | 4 | 0 |
| No. 45—प्रपञ्चहृदयम् (Prapanchahridaya) | 1 | 0 | 0 |
| No. 46—परिभाषावृत्तिः (Vyâkarana) by Nîlakantha Dîkshita. | 0 | 8 | 0 |
| No. 47—सिद्धान्तसिद्धाञ्जनम् (Vedânta) by Srî Krishnânânda Sarasvatî. (Part I) | 1 | 12 | 0 |
| No. 48— Do. Do. (Part II) | 2 | 0 | 0 |
| No. 49—गोलदीपिका (Jyotisha) by Parameswara. | 0 | 4 | 0 |
| No. 50—रसार्णवसुधाकरः (Alankara) by Singa Bhûpâla. | 3 | 0 | 0 |
| No. 51—नामलिङ्गानुशासनम् (Kosa) by Amarasimha with the two commentaries, Amarakosodghâtana of Kshîraswâmin and Tîkâsarvaswa of Vandyaghatîya Sarvananda (Part III, 2nd Kanda 7–10 Vargas) | 2 | 0 | 0 |
| No. 52—नामलिङ्गानुशासनम् (Kosa) by Amarasimha with the commentary Tîkâsarvaswa of Vandyaghatîya Sarvananda (Part IV, 3rd Kanda) | 1 | 8 | 0 |
| No. 53—शाब्दनिर्णयः (Vedânta) by Prakâsâtmayatîndra. | 0 | 12 | 0 |
| No. 54—स्फोटसिद्धिन्यायविचारः (Vyâkarana) | 0 | 4 | 0 |
| No. 55—मत्तविलासप्रहसनम् (Nâtaka) by Sri Mahendravikramavarman. | 0 | 8 | 0 |
| No. 56—मनुष्यालयचन्द्रिका (Silpa) | 0 | 8 | 0 |
| No. 57—रघुवीरचरितम् (Kavya) | 1 | 4 | 0 |

AUTAR
KRISHN

